रवीन्द्रनाथ टैगोर

गीतांजलि

नोबल पुरस्कार विजेता काव्य संग्रह

गीतांजलि

रवीन्द्रनाथ टैगोर

अनुवाद
प्रदीप पंडित
पुष्पा गोयल

डायमंड पॉकेट बुक्स

ISBN : 81-7182-975-9

प्रकाशक : डायमंड पॉकेट बुक्स (प्रा.) लि.
X-30, ओखला इंडस्ट्रीयल एरिया, फेज-II
नई दिल्ली-110020
फोन : 011-41611861, 011-40712100
फैक्स : 011-41611866
ई-मेल : sales@dpb.in
वेबसाइट : www.diamondbook.in
संस्करण : 2011

GITANJALI
by : Ravindranath Tagore

विषय-सूची

गीतांजलि से पहले

1

2

3

4

5

6

7

8

9

10

11

12

13

14

15

16

17

18

19

20

21

22

23

24

25

26

27

28

29

30

31

32

33

34

35

36

37

38

39

40

41

42

43

44

45

46

47

48

49

50

51

52

53

54

55

56

57

58

59

60

61

62

63

64

65

66

67

68

69

70

71

72

72

73

74

75

76

77

78

79

80

81

82

83

84

85

86

87

88

89

90

91

92

93

94

95

96

97

98

99

100

101

102

103

104

105

106

107

108

109

110

111

112

113

114

115

116

117

118

119

120

121

122

123

124

125

126

127

128

129

130

131

132

133

134

135

136

137

138

139

140

141

142

143

144

145

146

147

148

149

150

151

152

153

154

155

156

गीतांजलि से पहले

रवीन्द्रनाथ की कविता यात्रा हिन्दी में तो कम से कम पुर्नमूल्यांकन की दरकार रखती है। इतने वैविध्य विषयों पर एक साथ आम मनुष्य से जुड़ाव की चिंता के साथ कविता को जोड़े रखना उन्हें वैश्विक समकालीन चेतना से सम्पृक्त करता है। उन्होंने एक हजार कविताएं और दो हजार गीत लिखे। जब वे पन्द्रह बरस के थे तब उनकी पहली कविता पुस्तक छप चुकी थी और अंतिम कविता मृत्यु के ठीक पहले की लिखी हुई है।

वैसे रवीन्द्रनाथ सूफी रहस्यवाद और वैष्णव काव्य से प्रभावित थे। फिर भी संवेदना चित्रण में वे इन कवियों को अनुकृति नहीं लगते। जैसे मनुष्य के प्रति प्रेम अनजाने ही परमात्मा के प्रति प्रेम में तब्दील हो जाता है। वे नहीं मानते कि भगवान किसी आदम बीज की तरह है। उनके लिए प्रेम है प्रारंभ और परमात्मा है अंत! जब पहले पहल गीतांजलि का अनुवाद आया अंग्रेजी में तब प्रेम और शांति का संदेश के लिए इसका पश्चिम ने जबर्दस्त स्वागत किया। वह दौर ही ऐसा था। खुन्नस और खुंरेंजी से लकदक। ऐसे में आत्मविश्लेषण के नजरिये उन्होंने आदमकद करुणा विकसित की।

शरीर और आत्मा धरती और आकाश, इतिहास और रोमांस के सहज तनावों से जुझते हुए किसी भी महाकवि की तरह रवीन्द्र की तकनीक और स्वर बदलते रहे। इकबाल उन्हें ‘बुलबुल’ कहते रहे। मगर वे केवल ‘बुलबुल’ नहीं थे। उनमें एक जरूरी प्रभाव भी था जो बुलबुल की चुलबुल में शायद नहीं होता। गीतांजलि के सिलसिले में भी कई सवाल हैं। चर्चाएं हैं। जैसे अंग्रेजी गीतांजलि बिलकुल वही नहीं है जो बांग्ला है। विश्वभारती की बांग्ला गीतांजलि में साफ है कि अंग्रेजी गीतांजलि में इसकी मात्र 53 कविताएं ली गई है। बांग्ला में अंग्रेजी को सर्वाधिक चर्चित कविता 'ह्वेयर द माइंड इज विदाउट फीयर' है ही नहीं। बहरहाल, सवाल यह है कि अपनी केन्द्रीय भावना में रवीन्द्र लोक कवि हैं या नहीं? रहस्यवादी हैं या धार्मिक। उन्हें एक केन्द्रीभूत भावना में बांधकर रखना असंभव है। आप जितना ऐसा करते हैं रवीन्द्र आपकी चौखट तोड़कर बाहर आ जाते हैं। आप उन्हें रहस्यवाद कहते हैं तो वे किसान के हक में खड़े हो जाते हैं। यानी उनकी एन्द्रिक चेतना सीधे सरोकारों का ध्यान रखती है।

सिर्फ इतना कहना नाकाफी है कि गीतांजलि के स्वर में सिर्फ रहस्यवाद है। इसमें मध्ययुगीन कवियों का निपटारा भी है। धारदार तरीके से उनके मूल्यबोधों के खिलाफ। हालांकि पूरी गीतांजलि का स्वर यह नहीं है। उसमें तो मृत्यु, विरह प्रमुख विषयवस्तु है। यह

रवीन्द्रनाथ की सम्पूर्ण जिज्ञासा से उपजी रहस्योन्मुखकृति है, जिसका अनुवाद उतना भर नहीं है जितना किया जाता है। वह सुदूर अर्थों का समुच्चय भी है। उसमें एक तो उपस्थित अर्थ है ही, एक अनुपस्थित अर्थ भी है, जिसके जरिए वे अपनी बात कहते हैं। जागतिक निस्सारताओं को मानने के बावजूद वे उन्हें निरर्थक नहीं कहते, वे अस्तित्व को टुकड़ों में भी नहीं देखते। अस्तित्व का विनम्र-स्वीकार ही उनकी कारुणिक, लेकिन प्रामाणिक और घनित्वक अभिव्यक्ति है। वह भी अपने पूरे हरेपन के साथ।

● **प्रदीप पंडित**

1

मेरा शीश झुका दो अपनी
चरण धूलि के तल में।
प्रभु! डुबा दो अहंकार मन
मेरे अश्रुजल में।
अपने को गौरव देने को
अपमानित करता अपने को
अपने आप में घूम-घूम कर
मरता हूं क्षण-क्षण में।
प्रभु! डुबा दो अहंकार मन
मेरे अश्रुजल में।

अपने कार्यो में न करूं
मैं आत्मप्रचार प्रचार प्रभु!
अपनी इच्छा पूर्ण करो तुम
मेरे ही जीवन में।
मुझको अपनी चरम शांति दो
प्राणों में हो परम कांति
आप खड़े हो मुझे ओट दे
अपने हृदय कमल में।
प्रभु! डुबा दो अहंकार मन
मेरे अश्रुजल में।

2

अनगिनत वासनाओं पर मन से था रहा मर
तुमने बचा लिया उन सबसे वंचित कर।
संचित रहे करुणा कठोर इस जीवन भर।

बिन मांगे जो मुझे दिया है
गगन, ज्योति, तन-मन प्राण दिया है।
दिन-दिन मुझे बना रहे तुम
उस महादान के लिए योग्यतर।
अति-वासना के संकट से
मुझे उबार कर।

कभी भूल जाता कभी चलता किन्तु
तुम्हें बनाकर लक्ष्य-उसी राह पर
निष्ठुर! सामने से जाते हो तुम जो हट पर
है मालूम यह दया है तेरी
अपनाने को ठुकराते तुम
पूर्ण कर लोगे यह जीवन मेरा
अपने मिलन योग्य बनाकर।
आधी-इच्छा के संकट से
मुझे बचाकर।

3

अनजानों को जानकर
कितने घरों को दी राह–
किया दूर को निकट बंधु
कहा भाई परायों को
घर छोड़ पुराना जब-जब जाता
जाने क्या हो, मन घबराता,
नये के बीच तुम तो पुरातन
यह सत्य मैं बिसरा जाता।
किया दूर को निकट बंधु
कहा भाई परायों को।

जीने मरने में, अखिल भुवन में
जब-जहां भी अपना लोगे
जनम-जनम के जाने-अनजाने,
तुम्हीं सबसे परिचित कर दोगे।
तुम्हें जान लूं तो रहे न कोई पराया
न कोई मनाही, न कोई डर–
सारे रूपों में तुम हो जागे
दरस सदा तुम्हारा प्रभु हो।
किया दूर को निकट, बंधु
कहा भाई परायों को।

4

विपदाओं से मुझे बचाना
यह नहीं प्रार्थना मेरी।
विपदाओं में न होऊं भयभीत।
जब दुःखी हूं, चित्त व्यथित हो
न भी दो सांत्वना।
दुःखों को बस कर पाऊं जय मैं।
सहाय अगर जो कभी न जुटे
बल ना मेरा फिर भी टूटे।
क्षति जो घटे जगत में
लायेगी केवल वंचना
अपने मन में न मानूं कोई क्षय।

मुझे दुःखों से बाहर निकालो
यह नहीं मेरी प्रार्थना
तरने का बल कर पाऊं संचय।।
मेरा भार घटाकर तुम
न भी दो सांत्वना।
ढो पाऊं उसे इतना हो निश्चय।।।
सर झुकाये जब आये सुख
पहचान लूं मैं तुम्हारा मुख
दुख की रात में निखिल धरा
जब करें वंञ्चना।
तुम पर करूं न कोई संशय।।।।

5

अन्तर मन विकसित करो
अन्तरयामी हे!
निर्मल करो, उज्ज्वल करो
कर दो सुंदर हे!
जागृत करो, उद्दत करो
कर दो निर्भय हे!
मंगल करो, निरलस, नि:संशय कर दो हे!
अन्तर मन विकसित करो
अन्तरयामी हे!

युक्त करो सबसे मुझको हे
मुक्त करो सब बंधन।
सकल कर्म में भर दो अपने
शांतिमय सब छंद।
चरण-कमल में मेरा चित्त निस्पंन्दित कर हे!
नंदित करो, प्रभु नंदित करो, नंदित कर हे!
अन्तर मन विकसित करो
अन्तर-यामी हे!

6

प्रेम-प्राण, गंध-गान से, आलोक-पुलक से
प्लावित करके निखिल गगन तल-भूमंडल को
झर रहा हर क्षण तुम्हारा अमृत-निर्झर।

चारों ओर की सारी बाधाएं आज तोड़कर
आनंद जाग रहा अनोखा मूर्त्त रूप-धर,
निविड़ सुधा से जीवन उठा है भर।

चेतना मेरी उस कल्याण रस के मधुर स्पर्श से
कमल सी खिली परम हरस से।
उसका सब मधु तुम्हारे चरण धर कर।
नीरव ज्योति-जगी हिय-प्रदेश में
मुक्त उषा उदय की आभा निर्मल
अलस नयन का हटा आवरण।

7

तुम आओ प्राणों में नव-नव रूपों में
आओ गंध-वर्ण में, आओ गीतों में।
आओ पुलकित अंगों में सरस भर
आओ मुग्ध मुदित नयनों में।
तुम आओ प्राणों में नव-नव रूपों में।

8

आज धान के खेतों में धूप-छांव का
लुका-छिपी का खेल!
नील-गगन में किसने खोली
श्वेत मेघ की नौका।
आज भूल रहा मधु पीना भौरां
उड़ा फिर रहा वह प्रकाश में डूबा,
यह कैसा मेला नदी किनारे
चकवा-चकवी का।

आज न जाऊंगा घर मैं भाई
जाऊंगा आज न घर।
आकाश तोड़ लूट लूंगा
आज मैं सारी बहार।
ज्वार-का वो फेनिल जल
उड़ता फिर रहा हवा में खिलखिल
आज बिना काम के बजाकर बंसी
बीतेगा यह सारा दिन।

9

आनंद के सागर से
आया आज तूफान।
डांड पकड़ लो बैठ कर सब
खेता चल अम्लान।
बोझ चाहे कितना हो ज्यादा
कसी है पर दु:ख की नैया,
चले तरंगों पर उतराये
चले जाये भले प्राण।
आनंद के सागर से
आया आज तूफान।

कौन बुलाये है पीछे से
कौन करे है मना।
डर की बात करे कौन आज–
डर का हमें पता
कौन शाप ग्रह दशा कौन जो
सुख के किनारे रहूं मैं बैठा–
पाल की डोरी पकड़ जोर से
चलूंगा गाता गान।
आनंद के सागर से
आया आज तूफान।

10

तुम्हारे सोने के थाल में सजाऊंगा आज
दु:ख के अश्रुधार।
जननी, गूथूंगा ग्रीवा की
मंजुल मोती माल।
रवि-शशि लिपटे हैं आज
घर बने चरणों में।
तुम्हारे वक्ष की शोभा बढ़ाये
मेरे दु:ख के अलंकार।

धन-धान्य यह तुम्हारा धन
क्या करूं तुम बोलो
देना चाहो तो दे दो
लेना हो तो ले लो।
दु:ख है मेरे घर की चीज
खरे-रतन को तुम पहचानो।
तुम्हारे प्रसाद से उसे खरीदूं
यह मेरा अहंकार।

11

हमने कास-गुच्छ बांधा
गूंथी शेफाली माला।
नये धान के फूलों से
सजा लाया हूं डाला।
आओ हे! शारदे-अपने
श्वेत मेघ के रथ पर
आओ निर्मल नील गगन के पथ पर
आओ धुले सुश्यामल ज्योति झलमल
वन कानन पर्वत से।
माथे मुकुट श्वेत शतदल का
शीतल-शिशिर मणिमाला।

सुमन मालती के झर
आसन बना बिछा निर्जन में
भरा हुआ गंगा तट पर
मराल पंख फिर आये है।
बिछने को तुम्हारे चरणों में।

ताल करो गुंजार
अपनी सोने की वीणा के
मृदुल मधुर झंकार
खिलता सुर गल जायेगा

क्षणिक अश्रुधार में।
रह रह कर जो पारसमणि।
झलक झांकता झलमल
पलकों के नीचे सकरूण होकर
भुला दो भुला दो मन में–

सभी भावना बन जाये सोना
और अंधियारा उजियारा।

12

लगी सर-सर धुले पाल में
मंद-मधुर बयार।
कभी न देखी, कभी ने ऐसी
सधी हुई पतवार।

लाता कौन समंदर पारे
वह सुदूर का धन रे!
लुटा चाहता मन रे।
चाह, पाना को इसी किनारे
फेकूं तुरत उतरा

झिर-झिर झरता झर-झर जल
गुरु-गुरु गरज रहा है घन
छिटक-छिटक मेघों से पड़ती
मुख पर अरुण किरण

ओ खेवनहार, कौन हो तुम,
किसके हास्य-रूदन के धन।
सोच सोच मरता है मन,
कौन मंत्र गाओगे
किसलय में बांध सितार

13

नयनों को मेरे आये मुग्धकर
मैंने क्या यह देखा जी-भर।
हरसिंगार के पास-पास में
गिरे फूलों के हास-वास में
ओस नहायी घास-घास में
रक्त रंजित कदमों से आकर
नयनो को मेरे आये मुग्ध कर

धूप छांव का आंचल
लुट-लुट जाता है वन-वन में।
वह मुख निरख फूल न
जाने क्या कहता है मन-मन में।
तुम्हें हम करेंगे वरण,
मुंह का परदा करो हरण,
छोटा सा बादल का टुकड़ा
दोनों हाथों से दूर हटाकर
नयनों में मेरे आये मुग्धकर।

वन देवी के द्वार-द्वार पर
सुनती है गहरी शंख ध्वनि,
नभ-वीणा के तार-तार पर
उठ रहा स्वागत गीत।

बजी कहां स्वर्ण-नूपुर है।
शायद कहीं मेरा ही डर है।
सभी भाव, सभी कर्मो में
पाषाण निचोड़ा रस भर
नयनों में मेरे आये मुग्धकर।

14

जननी, तेरे चरण कल्याणी।
देखे मैंने आज प्रभात-किरण में।
जननी, तेरी मंजुल मनहर वाणी,
भर-उठती चुपचाप मौन गगन में।

शीश नवाऊं अखिल भुवन में
शीश-झुकाऊं सब कर्मो में,
तन-मन-धन मैं करूं निछावर आज
भक्ति-भाव से तेरी पूजा-अर्चन में।
जननी तेरे चरण कल्याणी।
देखे मैंने आज प्रभात किरण में।

15

उन्मुक्त उदार भुवन में
गूंज रहा आनन्द का गान,
वो गीत कब गहरा होकर
बजेगा मेरे हृदय में।

जल-गगन हवा और ज्योति
इनको प्यार करूंगा मैं कब,
कब ये हृदय सभा में आकर
बैंठेगें विभिन्न रूप धर।

नयन बिछाते ही कब होंगे
प्राण पुलक से पुलकित,
जिस पथ सें मैं चला जाऊंगा
सबको देकर तुष्टि।

तुम हो, कब किस क्षण में
सहज हो उठेगा जीवन में
खुद ही कब तुम्हारा काम
मुखरित होगा मेरे सर्वस पर।

16

घन पर घन घिरा गहन
घिरता आये अंधेरा–
मुझे तुम क्यों अकेले
बैठाये रखते द्वारे।

काम-काज के व्यस्त दिनों में
घिरा रहता विविध जनों में
आज मगर बैठा हूं मैं
तुम्हारे आश्वासन में।
मुझे तुम क्यों अकेले
बैठाये रखते द्वारे।

तुम अगर न दरस दो मुझको
करो मेरी अवहेलना,
कैसे करे भला बोलो
यह बादल की बेला।
दूर-दूर तक आंख बिछाये।
मैं उदास बैठा अपलक
प्राण मेरे रोते फिरे
व्याकुल हो पवन में
मुझे तुम क्यों अकेले
बैठाये रखते द्वारे।

17

कहां है प्रकाश, कहां है! अरे उजाला
जलाओ उसे लगा विरहानल ज्वाला।
है दीया, न है प्रकाश शिखा का
हाय भाग्य में यही लिखा था।
इससे तो था मरण कहीं वह आला
जलाओ उसे लगा विरहानल ज्वाला।

वेदना-दूतिका गा रही, रे मन
तेरे लिये जागते हैं भगवन्।
घनी रात के अंधियारे में
तुझे बुलाते प्रेम-मिलन को,
दुख दे रखते तेरा मान हर छन
तेरे लिये जागते हैं भगवन्।

घनघोर घटाओं से भर गया गगन
बादल बरस रहा झर-झर।
इस काली रात में क्योंकर
प्राण मेरे सहसा जागकर
यों क्यों कर रहे मर-मर
बादल बरस रहा झर झर।

बिजली कौंध जगाती आभा क्षण भर को
निविड़ तिमिर से भर देती नयनों को
न जाने कहां बहुत दूर में
बजा गीत गंभीर स्वर में
पथ पर खींच लिये जाता है प्राण
निविड़ तिमिर से भर देती नयनों को
कहां है प्रकाश कहां है अरे उजाला!

जलाओ उसे लगा विरहानल ज्वाला।
गरजे मेघ पवन पुकारे
हो न सकेगां फिर जाना रे!
घनी रात तम निकष-सा काला
कहां है प्रकाश कहां है अरे! उजाला

18

सावन की घनघोर घटा से
पांव दबा आये चुपके से
आये तुम निशा से नीरव
सबकी आंख बचाकर
प्रभात ने आज मुंदी है आंखें,
बेवजह बुलाये जाती हवा,
किसने नंगे नील गगन को
ढंक डाला कजरारे मेघों से।

गुंजन हीन हरित कानन है
बंद पड़ा है घर-घर–
अकेले कौन पथिक हो तुम
इस सुनसान डगर पर!
हे निसंग मीत, हे प्रियतम
खुला प्रतीक्षा में घर मन,
सम्मुख से मेरे स्वप्रसन्न।
मन; जाओ मुझे तुम यूं ठुकराकर।

19

आई घिर आसाढ़ी सांझ
डूब गया दिन ढ़ल कर।
बंधनहीन वर्षा की धारा
गिर रही है झर-झर।

अकेला बैठ अपने घर में
क्या मैं सोचूं अपने मन में,
यूथिका-वन में भीगी हवा
न जाने क्या कह जाती चल कर।
बंधन हीन वर्षा की धारा
गिर रही है झर-झर।

आज लहर लहरायी हिय में
ढूंढे न मिलता किनारा
भीगे वन के फूल महककर
मेरे प्राण रुलाता।
अंधियारी रातों की पहरें
भर दूं किस सुर की लहरें
कौन भूल, जो सब कुछ भूलकर
हो रहा मैं आकुलतर।
बंधनहीन वर्षा की धारा
गिर रही है झर-झर।

20

आज तूफानी रात में तुम्हारा अभिसार
प्राणों के मीत, बन्धु मेरे प्यार।
नभ निराश सा रोता हरदम
नहीं नींद नयनों में मम,
द्वार खोलकर, निरखूं मैं
प्रीतम, व्याकुल बारंबार।

देख नहीं पाता कुछ बाहर
सोचूं कहां तुम्हारी डगर
दूर कौन सी नदी-पार में
गहन कौन से वन कछार में
अगम कौन से अंधकार में
हो रहे तुम पार
प्राणों के मीत, बंधु मेरे प्यार

21

जानूं कौन-से आदिकाल से
बहाया मुझे जीवन-नहर में
सहसा है कहां, गेह में, पथ में
प्राणों में जगा दिया है हर्षण।

कितनी बार मेघों में छिपकर
खड़े हुये बस यूंही हंसकर
सूर्य किरण में चरण बढ़ाकर
ललाट में रहा शुभ परसन।

संचित है इन आंखों में
कितने लोक, कितने ही युग-युग
कितनी नव-नव ज्योति-ज्योति में
रूपहीन के अभिनव दर्शन

युग-युग तक कोई न जाने
भर-भर लाये इन प्राणों में
सुख-दुख कितने प्रेम गीतों में
अमृत में कितने रसवर्षण।

22

कैसे, कैसे गाते तुम गान
अवाक हो सुनता मैं, सुनता मौन निदान।
भर देती वह सुर जोत भुवन को
भर देती वह सुर हवा गगन को
प्रस्तर-तोड़ कठिन उन्मन हो
बह जाती सुर की गंगा अम्लान।

जी होता मैं गाऊं तुम्हारे सुर में
नहीं कंठ में पाता वह स्वर मैं
कहा चाहते प्राण न पुरती बानी
रोते हैं हरबार हार अभिमानी
मुझे डाला तुमने किस फंदे में
चहु-दिशा में सुर का जाला तान।

23

ओट में यों छिपने से
काम नहीं चलने का।
आन छिपो अन्तर में मेरे,
जानेगा, न कोई कुछ कहेगा।
छुपा-छुपी का खेल तुम्हारा
देश-विदेश जितना दूं फेरा–
अब तो कहो रहोगे मन में
और नहीं छलने का।
ओट में यों छिपने से
काम नहीं चलने का

जानूं मेरा हृदय कठोर है
तेरे चरणों के योग्य नहीं है–
बंधु, तुम्हारी हवा लगे हृदय में
प्राण नहीं गलने का।
माना वैसी नहीं साधना
पर जो हो तुम्हारी करुणा
क्या तब फूल न फूलेंगे।
फल नहीं फलने का।
ओट में यों छिपने से
काम नहीं चलने का

24

दर्शन जो न मिले तुम्हारे प्रभु
अबकी इस जीवन में
मैं न तुम्हें पा सका, बात यह
याद रहे मन में
भूल न जाऊं, पीड़ा पाऊं
सपने और शयन में।

इस जगत की हाट में
जितने भी दिन बीते,
ये दो मुट्ठी लिप्त रहीं चाहे जितनी धन में
फिर भी न कुछ भी मिला मुझे
याद रहे यह मन में।
भूल न जाऊं पीड़ा पाऊं
सपने और शयन में।

जो आलस से भरकर
बैठा रहूं मैं पथ पर
माटी में जो सेज लगाऊं कितने ही जतन से
सारी राह अभी बाकी है।
याद रहे यह मन में।
भूल न जाऊं पीड़ा पाऊं
सपने और शयन में।

निखरे हंसी जितनी भी
घर बांसुरी मुखर भी
जितना भी मैं साज सजाऊं घर के आयोजन में
तुम्हें न उसमें ला सका हूं
याद रहे यह मन में।

भूल न जाऊं, पीड़ा पाऊं
सपने और शयन में

25

तुम्हारे विरह ही अहरह
राजित है भुवन-भुवन में
रुप-रुप में शोभित है
नभ-सागर गिरी-कानन में।
सारी रात एक-एक तारे में
निमेष विहीन नयनों में मौन खड़ा हो,
विरह तुम्हारा ही पल्लव पर
बजता है सावन में

घर-घर में कितनी ही पीड़ा
तुम्हारे गंभीर विरह में आये
कितना प्रेम हाय कितनी वासनाएं
सुख-दुख कार्य कलन में कितना!
कर उदास यह सारा जीवन
गान-लय में झड़ा पिघल
भर उठा है तेरा विरह
मेरे अन्तरमन में।

26

खत्म हुई रे बेला
छाया उतरी धरती पर
चलो-चलो पनघट पर
गागर ले आये भरकर।
जलधारा के कलकल स्वर में
सांध्य गगन को आकुल करके
उसी राह पर मुझे पुकारे
उसी एक ध्वनि पर।
चलो-चलो पनघट पर
गागर ले आये भरकर

पड़ा है सूना निर्जन पथ
न चले न कोई राही
ओरे, प्रेम नदी लहराई
बह रही उछाही हवा।
न जानूं लौट पाऊं कि नहीं फिर
किससे तो परिचय होगा चिर
फिर पनघट पर वही अजाना
तरणी पर बजाये वीणा
चलो रे चलो पनघट पर
गागर ले आये भरकर।

27

आज बरस रही झर-झर
भरी बदरी भादों की।
थमती नहीं गगन-उजाड़ी
आकुल धारा पलभर।
सबल सालवन में रह-रहकर
प्रबल पेंगे भरते हैं झोंके।
दौड़ रहा जल पागल होकर
इधर-उधर वह भू पर।
आज जटा-घटा की यूं उड़ाकर
कौन नाचता तत्पर।

अरे उड़ा मन आज झड़ी में
लुट रहा पागल पवन में
हृदय बीच में उठकर लहरें
पड़ती किन चरणों में
हृदय में आज क्या कोलाहल
द्वारे-द्वारे दूरे अर्गल
जाग उठा हृदय में पागल
इस भादों में आकर।
आज कौन इस बुरी तरह से
मतवाला घर बाहर।

28

प्रभु, तुम्हारे लिये नैन यह जागे
दरस न पाऊं
पंथ निहारूं
वह भी अच्छा लागे।

बैठ धूलि धूसरित द्वारे
भिखमंगा यह अंतर हारे
करुणा तुम्हारी मांगे।
कृपा न पाऊं
आस लगाऊं
वह भी अच्छा लागे।
आज न जाने इस जगत में
खुशी-खुशी कितने कामों में
चले गये सब आगे।
साथी न पाऊं
तुम्हें बुलाऊं
वह भी अच्छा लागे।
चारों ओर सुधा सरस-सी
यह जो व्याकुल श्यामल धरती
रूला रही अनुरागे।
दरस न पाऊं
पीड़ा पाऊं
वह भी अच्छा लागे।

29

उलझा है धन-जन से यह जीवन
जानो तुम्हें चाहता है मन!
अन्तर में हो हे! अन्तरयामी–
मुझसे मुझको अधिक जानते स्वामी–
सब सुख-दुख भूले रहने पर भी
जानो तुम्हें चाहता मन!

पल भर न छोड़ पाया अहंकार
माथे चढ़ा ढ़ोया जीवनभर
उसे छोड़ पाता मिलता जीवन,
जानो तुम्हें चाहता है मन!

जो भी है जीवन का सरबस
तुम कब ले लोगे बरबस
सब देकर-पाऊंगा तुमको
मन-मन में मन चाहता तुझको।

30

यही, यही है प्रेम तुम्हारा
ओ! मेरे मनहर
पात-पात पर नाच रहा जो
वो सोने का कर।

यह जो मधुर अलस से भरकर
नभ में लिखा इधर-उधर
यह जो हवा सारी देह को
देती अमृत से भर।
हां यही है प्रेम तुम्हारा
ओ! मेरे मनहर।

प्रभात-प्रभा की अरुण लहर में
खोये हैं मेरे नैन।
यह तुम्हारी प्रेम रस वाणी
भर आई प्राणों में।
यह जो झुका तुम्हारा ही मुख
गड़ी मुझ पर आंख दो उत्सुक
मेरे हृदय ने आज छुए हैं
तुम्हारे चरण।

31

यहां रहूं मैं गाने को ही
सिर्फ तुम्हारा गान
देना अपनी जगत-सभा में
सिर्फ इतना सा स्थान।
यह जो है भुवन तुम्हारा
उसमें काम न कुछ मैं आया
सिर्फ सुर पर ही बज पाया
इस किंचन का प्राण।

रात विजन मंदिर में होती
जब तेरी अराधना
तब आदेश मुझे तुम देना
गाने का राजन।
प्रात हुये जब नील गगन पर
बजे वीणा के सोने का स्वर
तब न तुमसे दूर रहें पर
इतना रखना मान।

32

तोड़ दो आज भय यह मेरा तोड़ो
मेरी ओर भी मुख फेर जरा निहारो।
चीन्हता हूं मैं तुम्हें पास से
कहां देखता, जाने किस आस से
तुम हो मेरे हृदय विहारी
हृदय बीच हंस-हंस दुलराओ।

बात करो कुछ बोलो मुझसे
शरीर मेरा कुछ परस करो।
अपना दांया हाथ बढ़ाकर
मुझे पकड़लो, हरसो।
जो भी भूल समझूं मैं
जो भी खोजूं, भूल खोजूं मैं
झूठी हंसी, और रोना झूठा
सामने आकर भूल सुधारो।

33

इन सबने फिरसे घेरा मेरा मन।
फिर आंखों में घिरने लगा आवरण।
लगा फिर विविध बातों का मेला जुड़ने
चित्र मेरा लगा कहां-कहां उड़ने
फिर लगा दाह धीरे-धीरे बढ़ने
पड़ा चरण को फिर खोने का फेरा

नीरव वाणी मेरे अन्तरमन में
डूब न जाये जग के कोलाहल में
सबके बीच तुम रहो मेरे साथ
मुझे हमेशा अपने साथ ही रखो।
निशि दिन मेरे चेतन पर तुम रहो
ज्योतिर्मय-खिला हुआ यह त्रिभुवन।

34

मेरे मिलन हेतु तुम
आ रहे हो कब से
तुम्हारे चांद-सूरज तुम्हें
कहां रखेगें ढ़ंककर।
कितने युग के सांझ सबेरे
ध्वनित हो रहे चरण तुम्हारे
चुपके दूत हृदय में आकर
मुझको गया पुकार।
ओ पथिक, आज मेरे मन का
कोना-कोना भरकर
रह-रह कर बेचैन मगर यह
कांप रहा है थर-थर।
मानों वो समय आया आज
चुका हो आखिर जो था काम
हवा आती है महाराज!
तुम्हारी सुगंध लेकर।

35

आओ रे! आओ श्यामल घन आओ
रिमझिम-रिमझिम झड़ी लगाओ!
अपना श्यामल स्नेह विपुल ले
इस जीवन पर छा जाओ।
आओ शिखर चूम-चूम कर
छाया से वन भूमि को भरकर
आओ तुम अंबर आच्छादित कर
आओ गहरे गर्जन स्वर से।

व्यथित हो उठे गहन नीप-वन
पुलकाकुल फूलों से
छलक-छलक आये कलरोदन
नदी के कूलों से।
आओ रे! आओ हृदय भरने वाले
जलन प्यास की हरने वाले
नयनों को शीतल करने वाले
हृदय-समुद्र में समा जाओ।

36

साथ नहीं दे पाओगे क्या इस छंद में
गिर जाने के, तिर जाने के और
टूटने के आनंद में।
कान बिछाये सुनते भी जो
दिशा-दिशा-गगन के बीच
मरण वीणा पर बजता क्या जो
सूरज-तारे-चंदा में।
ज्वाला जला सतत जलते
जल जाने के आनन्द में।

पागल करने वाली धुन पर
कहां भागता कौन जाने पर
देखता नहीं पीछे मुड़कर
रहता बंधा न बंध में
लुट जाने का, छुट जाने का
चलने के आनन्द में
उसी खुशी में चरण बिछाये
छहो ऋतु नाचे-गाये।
भू पर एक बाढ़ बह जाये
वही-गीत और गंध में
फेंक देने के, छोड़ देने के
मर जाने के आनन्द में

37

छूट गया रे छूट गया स्वप्न निशा का छूट गया
टूट गया रे टूट गया बंधन सारा टूट गया
नहीं रहा कुछ ओट प्राण पर
निकला खुले जगत में बाहर
हृदय-शतदल का एक-एक दल
फूट गया रे फूट गया।

द्वार मेरा तोड़कर आखिर
आ खड़े हुये तुम आ धिर
आंसू भरा हृदय
चरणों में-लुट गया रे! लुट गया।
आसमान से प्रात-किरण ने
मेरी तरफ जो हाथ बढ़ाया
टूटी कारा पर जय-जय रव
उठकर मेरा लोट गया।

38

शरत् में आज कौन अतिथि
आया हृदय के द्वारे–
आनन्द गान गा रे हृदय
आनन्द गान गा रे!
नीले नभ की मौन कथाएं
ओस भीगी व्याकुलताएं
बज जाने दो आज तुम्हारे
वीणा के तार-तार पर।

खेतों के हेमल गीतों में
आज तू ताल-में ताल मिला दे
बह जाने दे सुर की सुरभि
धारा की मंझधार में।

जो आया है तेरे द्वारे
देख उसे तू गाढ़े सुख से
द्वार खोलकर साथ उसी के
बाहर चला जा रे!

39

आना हुआ यहां गाने को जो गान
हुआ न उसको अब तक गाना
स्वर ही रहा साधता
केवल बच रहा अरमान।

मेरे पास नहीं वो सुर,
मेरे पास नहीं वो स्वर
प्राणों में ही घुमड़ रही है
गाने की व्याकुलता।
आज भी नहीं खिला वह फूल
केवल बही हवा की आन।

नहीं देख पाया मुख उसका
सुनी न उसकी वाणी–
केवल सुनता रहा पल-पल
उसकी पग-ध्वनि पहचानी।
मेरे द्वार के सम्मुख से
आता-जाता वह अनजान।

आसन बिछाते बीत गया
आज का सारा दिन।
घर न जलाया दीया अबतक
कैसे उसे बुलाता।
आशा लिये मिलन की बैठा
मिला न वह छविमान।

40

खो गया जो उसे ढूंढता
रहूं कब तक बेकार
और न होता रतजगा
इतना सोच अपार
क्या तो रजनी क्या तो वासर
बैठा रहूं बंद किये घर
आने वाले को शंका से
भगा रहा हर-बार।

इसीलिये होता न आना
किसी का मेरे घर।
पुलक भर यह भुवन तुम्हारा
खेला करता बाहर।
तुम भी शायद पथ नहीं पाते।
आकर लौट-लौट हो जाते
रखना जिसे धूल में वह
भी एकाकार!!

41

यह मैला परिधान त्यागना
ही होगा इस बार।
मेरे इस मलिन अहं का भार।
दिन के कामों में धूल-धूसर
बहुत दाग लग जाते उसपर
इतना तपा हुआ है वो
सहना हो रहा भार।

अब तो काम खत्म हुआ सब
दिन का हुआ अवसान
उनके आने की बेला है
आस पुलकित प्राण।
स्नान कर आओ अब तो झटपट
पहनना होगा तुम्हें प्रेमपट
तोड़ गूंथना है संध्या, वन फूलों की हार!
आओ रे! आओ! समय नहीं है और!

42

पुलक जागता रहती तन में
नयनों में मद घोर–
हृदय में किसने बांधी है
रंगीन राखी डोर।
आज इस गगन के नीचे
जन-थल में; फूलों में; फल में।
बिखेर दिया मेरा मन कैसे
हे! मेरे चितचोर।

आज हुआ यह कैसा
खेल तुम्हारे साथ,
क्या कुछ पाया खोज रहा मैं
सोच रहा यह मन में।
ये तो क्या आनन्द बहाना
चाह रहा आंसू में रोना
विरह आज मधुर होकर
प्राणों को कर रहा विभोर।

43

प्रभु! आज अपना दायां हाथ
न रखो ढंककर।
आया हूं मैं, हे नाथ
तुम्हें पहनाने राखी।

जो मैं राखी तुम्हें पहनाऊं
सबसे मैं खुद बंध जाऊं
जो बचे रहे है जहां पर
न छूटेंगे किसी प्रकार

आज न कोई भेद रह जाए
अपने और परायों में
देख सकूं मैं तुम्हें एक ही
क्या बाहर क्या घर में।
तुमसे यह जो बिछुड़-अलग हो
घूम रहा मैं रो-रो
यह विच्छेद मिटाने को
तुम्हें रहा पुकार।

44

जगत के आनन्द-यज्ञ में मेरा है निमंत्रण
धन्य हुआ धन्य हुआ यह मानव जीवन
मेरे नैन रूप के पुर में
साध मिटाये फिरते घूमें
मेरी श्रुतियां गहरे सुर में
हो रही हैं मगन

तुम्हारे यक्ष का दिया है भार
बजा रहा मैं बांसुरी
गीत-गीत को गूंथता फिरूं मैं
हंसी-रूदन का हार,
अब आ गया वह समय क्या।
तुम्हे सभा में देखूं जा
जय-जयकार सुना जाऊंगा
यही मेरा निवेदन।

45

जगमग-जगमग ज्योति जगाते आये
आए प्रकाश के प्राण।
मेरी आंखों का अंधियारा
हुआ है अन्तरधान।
सारा गगन, सारी धरा
आनन्द हंसी-खुशी से भरा
जिधर उठाता नयन उधर ही
सब कुछ अच्छा-अच्छा।

तुम्हारी किरण पत्ते-पत्ते पर
भर देती है प्राण।
तुम्हारा प्रकाश पंछी के घर में
जगा देता है गान।
बड़े प्यार से ज्योति तुम्हारी
तन पर मेरे आकर उतरी।
हृदय सहला रही उसकी
विमल हथेली आन।

46

आसन के नीचे पड़ा रहूंगा, रहूं पड़ा माटी के ऊपर
चरणों की रज में लोट तुम्हारे हो जाऊंगा धूसर
दूर-दूर रखते हो मुझको देकर मान वृथा क्यों
भुला न देना जीवन भर मेरे नाथ मुझे यों।
अपमानित कर खींच लाओ अपने चरणों पर
लोट तुम्हारे चरणों की रज में होऊंगा धूसर।

मैं हूंगा तुम तक जानेवाले दल के पीछे
देना स्थान हे स्वामी मुझे तुम सबके नीचे।
प्रसाद पाने को कितने लोग हैं आते
मैं न कुछ भी मांगूंगा, देखूंगा आंख बिछाये।
सबके बाद बचेगा जो भी ले लूंगा हंसकर
चरणों की रज में लोट तुम्हारे हो जाऊंगा धूसर।

47

रूप सागर में डूब रहा मैं
अरूप धन की आशा कर
घाट-घाट अब न फिरूंगा
लेकर अपनी नौका जर्जर।
अबकी तो वह समय आ जाये
लहरों से लड़ना चुक जाये
डुबा रहूं ऐसी सुधा में
अमर हो जाऊंगा मरकर।

जो गीत न सुना जाता कानों से
नित्य बजता जहां वह गाना
प्राणों की वीणा ले जाऊंगा
उसी अतल की भरी सभा में
तार बांधकर चरम तान में
शेष गान में उनको रोकर
नीरव वीणा यह धर दूंगा।

48

गगन तल में खिल उठा है
ज्योति का शतदल।
एक-एक कर मृदुल पंखुरी
हर दिशा में बिखरी-बिखरी
ढ़ंक गया है अन्धकार का
निविड़ काला जल।
कनक कोष में उसके भीतर
बैठा हूं मैं पुलकित होकर
घर को मेरे घेर फैलाता
ज्योति का शतदल।

आकाश में तरंग लहराती
हवा रही चल।
बज रहे चहुं दिशा में गान
नाच रहे हर ओर प्राण।
गगन-भरा मृदु स्पर्श यह
तन को लगे पल-पल।
प्राण-सागर में लगा डुबकी
भर रहा प्राणों से छाती
और घेर कर मुझको चंचल
हवा रही है चल।

दशों दिशाओं आंचल फैलाकर
अंक दिया माटी ने।
जहां-जहां जो रहता प्राणी
बुलाकर सबको ले आती

49

अन्न वो देती बांट
भर गया मन गीत-गंध से
बैठा हूं मैं महा आनन्द से
मुझे घेर फैलाकर आंचल
अंक दिया माटी ने।
हे! आलोक नमन लो मेरा
मिटा सब अपराध
ललाट पर मेरे रखना तुम
प्रभु का आशीर्वाद।
हे हवा, नमन लो मेरा
मिटा सब अवसाद।
सबके फेरो अगं-अंग में
प्रभु का आशीर्वाद।
हे माटी नमन लो मेरा
पूरी हो सब साध।
लाओ और फलाओं घर-घर
प्रभु का आशीर्वाद।

50

यहां जिन्होंने गोद बिछाई
हम लोगों के घर पर।
आसन उसका सजा रे भाई
मन चाहा सुन्दर-तर।
गीत गा तू आनन्द मन से
फेंक बाहर सारी धूल तू
जतन करके दूर कर तू
सारी आवर्जना।
जल छिड़क फूलों को तू
रख साजी भरकर–
आसन उसका सजा रे भाई
मन चाहा सुन्दर-तर।
दिन-रात रहते हैं वो
हमारे ही घर-पर।
सुबह सवेरे हंसी उन्हीं की
ढल जाती ज्योति पर।
ज्योंही सुबह जाग उठूं मैं
देखूं आंख पसार,
देख रहे वो हमें खुशी से
पल को पलक न मारे।
उनकी खुशी और प्रसन्नता से
भर जाता सारा घर,

सुबह सवेरे हंसी उन्हीं की
ढल जाती ज्योति पर।
अकेले वो बैठे रहते
हमारे ही घर-पर।

हम जब अपने किसी काम से
कहीं निकलते बाहर।
द्वार के पास तक से हमें
छोड़ने हमेशा हैं आते।
और खुश मन से उस पथ पर
गाते हम आनन्द गान।
हुए सांझ जब घर को आते
कामों से छुट्टी पाकर
देखूं वो अकेले बैठे
हमारे ही घर पर।
वो जागकर बैठे रहते
हमारे ही घर पर
हम सब जब अचेतन होकर
पड़े रहते अपनी शैया पर।
जगत में कोई देख न पाता
छिपी ज्योत को उसकी।
आंचल ओट दिए रहते हैं
सारी रात जलाए।
नींद आते ही स्वप्न कितने ही
आते-जाते रहते
अंधेरे में वों हंसते रहते
हमारे ही घर पर।

51

जहां देवता विजन प्राण के
जाग रहे एकाकी,
भक्त खोल दो द्वार वहां का
आज देखूं मैं उनकी झांकी।
किसे ढूंढता-फिरता दिन भर
भटका हुआ मैं बाहर
सीख नहीं पाया हूं मैं।
आरति ही संध्या की
अपना जीवन दीप बाल ले
जीवन ज्योति तुम्हारी
आज सजाऊंगा विजन में
अपना थाल पुजारी
जहां निखिल की सजग साधना
पूजालोक कर रही रचना
वहां एक ज्योति की धरुंगा
रेखा मैं भी बाकी।

52

किस ज्योति से जला प्राणदीप
धरा में आते हो तुम।
साधक और, प्रेमी ओ रे
ओ रे! पागल, जग में आते हो तुम।
इस अथाह संसार में
चोट दु:ख की खा प्राणों में वीणा की झंकार।
घोर विपदा के बीच
किस जननी की हंसी देख मुस्काते।
तुम किसकी खोज में
सारे सुखों को लगाकर आग घूम रहे क्या जाने।
इतना व्याकुल कर
कौन तुम्हें रुलाते जिसे अपनाते तुम।
तुम्हें चिन्ता कोई नहीं
कौन वो तुम्हारा साथी सोच रहा हूं यही।
तुम मरण को भूल
किस अनंत जीवन-निधि में तिरते जाते।

53

तुम मेरे अपने हो, रहते हो प्रिय! पास,
बात यह आज कह लेने दो – कह लेने दो।
तुममें ही है मेरे जीवन की सारी खुशियां
बात यह आज कह लेने दो कह लेने दो।
भर दो कंठ सुधामय सुर से
वाणी का वरदान मधुर दे
मेरे प्रियतम, यह बात मुझे तुम
हृदय खोलकर, कह लेने दो, कह लेने दो।
यह निखिल आकाश, धरा यह
तुमसे प्राणवंत हैं अहरह
हृदय खोल इस बात को
कह लेने दो, कह लेने दो।
दु:खी जान पास तुम आते
छोटा समझ प्यार तुम करते
छोटे मुंह से इसी बात को
कह लेने दो, कह लेने दो।

54

झुक जाने दो, झुक जाने दो
अपने चरणों के तल में।
हृदय गला दो, धो दो जीवन
मेरे अश्रु जल में।
मैं अकेला अहंकार के
रहता उच्च अचल पर।
तोड़ गिराओ प्रस्तर आसन
रज में, पल में
मुझे उतार धरो तुम अपने
चरणों के तल में
क्या है जिस पर गर्व करूं मैं
व्यर्थ के इस जीवन पर।
भरे सदन बिना तुम्हारे सुना अंतर
डूब गए मेरे दिन के सब
कर्म अतल में।
सांझ बेला की पूजा मेरी
हो न जाए विफल यूं
झुक जाने दो झुक जाने दो
अपने चरणों के तल में।

55

आज गंध विधुर समीरण में
किसे ढूंढ़ता फिरू वन-वन में
आज क्षुब्ध नील गगन के आंगन
गुंजित यह क्या चंचल क्रंदन।
बजता करुण संगीत दिगंत में
लगे मेरे कारज, चिंतन में।
किसको खोजूं अन्तर मन में
गंध विधुर समीरण में।
ओरे – न जानूं क्या नंदन रागे
सुख में उत्सुक यौवन जागे।
आज आम्र-मुकुल के गंध में,
नव पल्लव के छन्द में,
चन्द्र-किरण सुधा सिंचित अम्बर के
अश्रु सरस हर्षोज्ज्वल में।
मैं पुलकित किस परसन में
गंध विधुर समीरण में।

56

आज वसंत आया है तेरे द्वारे
अवगुन्ठित कुन्ठित जीवन की
मत उड़ाना हंसी रे।
आज खोलो हृदय-दल खोलो
आज भूल जाओ अपने परायों को
इस संगीत-गुंजरित गगन में,
निज सुगंध-तरंग लहरा लो।
बाहर-भुवन की दिशा खोकर
बिखेरो माधुरी यूं भर-भरकर।
अति निविड़ वेदना वन में
हर पत्ते में बज रे
दूर गगन में किसकी ओर देखकर
आज व्याकुल वसुधा सजी रे।
प्राणों में लगी दक्षिणी हवा
घर-घर वह मांग रही क्या
यह सौरभ विह्वल रजनी
किसके चरणों में जा जगी रे।
ओ सुंदर, वल्लभ कान्त
ये आह्वान किसे तुम्हारे।

57

अपने सिंहासन के आसन से
आए तुम उतरकर।
मेरे सूने घर के द्वारे
खड़े नाथ तुम रूककर
अकेला बैठा मन ही मन में
गा रहा था गान,
तुम्हारे कानों तक गया वो स्वर
आए तुम उतरकर।
मेरे सूने घर के द्वारे
आए नाथ उतरकर।
कितने गान, गुणीजन कितने
तुम्हारी सभा में जानें–
मेरे जैसे निगुणी का गीत
बजा तुम्हारे प्रेम में।
लगा विश्व सभा के बीच
एक करुण सुर।
हाथों में लिए वरमाला
आए तुम उतरकर–
मेरे सूने घर के द्वारे
खड़े नाथ तुम रूककर।

58

मेरे नाथ मुझे अपना लो
अपना लो इस बार
अबकी मत लौटो, बस जाओ,
उस पर कर अधिकार
बिना तुम्हारे बीते दिन जो
फिर से नहीं मांगता उनको
मिले खाक में वे सब।
जगूं तुम्हारी जगमग ज्योति में
जीवन सतत पसार।
किस आवेश, किस बात पर जानें
यहां-वहां भटका अनजाने,
घाट-घाट मैं कितने।
हृदय पास उस मुख को रखकर
अपनी वाणी कहो पुकार।
कितने दाग, कितनी चालाकी
अब भी पड़ हुई है बाकी
मनके अन्तर-तम में,
इस कसूर पर मत लौटा देना
उन्हें बना दो राख।

59

जीवन जब नीरस हो जाए
करुण-धार बन आना
सब माधुरी जब खो जाए
गीत सुधा रस लाना।
कर्म जिस दिन होकर प्रबलतर
चारों ओर से ढ़ंक ले गरजकर
हृदय प्रान्त में हे! नीरव नाथ
शान्त चरण धर आना।
अपने को जब बनाकर कृपण
कोने पड़ा रहता दीनहीन मन
द्वार खोलकर, हे उदार प्रभु
राज समारोह में आना
विपुल रज डाले जब वासना
अंधा कर अबूझ भुला दे
हे पवित्र, हे अनिद्र
रूद्र वेश में आना।

60

इसबार नीरव कर दो हे नाथ
अपने मुखर कवि को।
उसकी हृदय-वंशी छीनकर
बजा दो उसे गहरे में।
निशीथ रजनी के निविड़ सुर में
भर दो तान बांसुरी में,
जिस तान ने कर रखा अवाक्
ग्रहों और नक्षत्रों को।
जो कुछ मेरा बिखरा पड़ा है
जीवन और मरण में
गीतों के स्वर से आ मिले वो
तुम्हारे इन चरणों में।
बहुत दिनों का शब्दों का संचय
पल में हो जाए विलय
अकेला बैठ सुनूं बांसुरी
अगम तम के तीरे।

61

विश्व जब निद्रा में मगन
गगन में अंधकार
कौन छेड़ता वीणा के तारों में
ऐसी झंकार।
ले ली चुपके नींद नयन से
उठ-उठ बैठूं मैं शयन से
आंख पसारे रहता बैठा
दरस न होते उसके।
भर आए आकंठ गुनगुन
गुंजन से ये प्राण।
नहीं जानता किस विपुल राग की
यह है व्याकुल तान।
समझ न आता किस दर्द से
हृदय भर जाता अश्रुजल से
पहनाना चाहता मैं किसको
अपना कण्ठहार।

62

पास आ वो बैठ गया था
नहीं तब भी मैं जागी।
ऐसी क्या तुझे नींद लगी थी
हे! हत भागिनी।
आया था वह नीरव रात में
वीणा अपनी लिए हाथ में
स्वप्नों के बीच बजा गया वो
गहन रागिनी।
जगी तो देख दक्षिण की पवन
पागल कर रही
गंध उसकी उड़ी फिरती
अंधेरे को भरकर।
मेरी रात क्यों व्यर्थ है जाती
पास होकर भी पास न पाती
क्यों उसकी माला का परस
मेरे हृदय लगा नहीं।

63

तुमने सुनी नहीं क्या सुनी नहीं उसकी पदचाप
वो जा रहे, आते हैं, आते हैं, आते हैं चुपचाप
युग-युग पल-पल दिन हो या रात
वो आ रहे, आते हैं, आते हैं, आते हैं चुपचाप।
गीत जहां जितने भी गाए
अपने मन में पागल होकर
सारे सुरों में बजा उसका
स्वागत गान।
वो आ रहे, आते हैं, आते हैं आते हैं चुपचाप।
कितने युगों से फागुन के दिन में वन के पथ से
वो आ रहे, आते हैं, आते हैं आते हैं चुपचाप।
कितने सावन के अंधकार में मेघों के रथ से
वो आ रहे, आते हैं, आते हैं आते हैं चुपचाप।
दुःखों के बाद परम दुःख में
उन्हीं के चरण मरम में बाजे
सुख में कब वो सहला देता
पारस मणि।
वो आ रहे, आते हैं, आते हैं, आते हैं चुपचाप।

64

मान गया मैं मान गया मैं हार
ठुकराया जितना ही तुमको
उतना ही अपने ऊपर किया प्रहार
मेरे चित्त गगन से तुमको
ढंक रखना चाहे कोई जो
तुम नहीं सह सकते यह
जाना मैंने बारंबार।
अतीत मेरा छाया की तरह
चलता पीछे पीछे,
माया की मुरली टेक बुलाता
मुझे व्यर्थ ही क्षण-क्षण।
उससे टूट चुका सब नाता
पड़ा तुम्हारे हाथों में आ
जो भी है मेरे जीवन का
ले आया हूं तुम्हारे द्वार

65

एक एक कर सभी तुम्हारे
पुराने तार फेंको उतार;
नए सिरे से बांधों आज सितार।
बिखर गया लो दिन का मेला
बैठेगी सभा सांझ की बेला,
अन्तिम सुर बजा जो, उसका
समय हुआ आने का–
नए सिरे से बांधों आज सितार।
द्वार अपना खोल दो तुम
अंधेरे इस गगन में
सातों लोकों की नीरवता
आ जाए आगंन में।
इतने दिन गीत जो गाए
अंत आज उनका हो जाए
यह साज, जो तुम्हारा है यह
यही बात है अच्छी
नए सिरे से बांधों आज सितार।

66

गाते गीत तुम्हारे जाने कब निकला मैं पथ पर
वो बातें आज की नहीं उसके दिन बीते
भूल गया हूं कबसे चाहता अंतर
वो बातें आज की नहीं, उसके दिन बीते।
नदी जैसे बहती
न जाने वो किसे चाहती
इसी तरह मैं बहता आया
जीवन-धार पकड़कर।
वो बात आज की नहीं उसके दिन बीते।
जाने किस-किस नाम पुकारा
आंका कितना चित्र तुम्हारा
पता नहीं कुछ चला चल रहा
किस आनन्द में भरकर
वो बात आज की नहीं, उसके दिन बीते।
जैसे कुसुम किरण को जागे
बात बिना जाने अनुरागे
इसी तरह तेरी आशा में
मोहित हृदय निरंतर
वो बात आज की नहीं उसके दिन बीते।

तुम्हारा प्रेम ढ़ो सकूं मैं
इतनी मेरी शक्ति कहां
इसीलिए दुनिया में अपने
मेरे बीच अपार
नाथ! दयापूर्वक ही तुमने
रखा है व्यवधान!
सुख-दु:ख के हैं जाल घनेरे
जन-धन वैभव मान।
आड़-ओट से पल-पल जिसकी
दिखलाते हो झांकी–
काले मेघ के बीच–
सूर्य की रश्मि रेख सी बांकी
ढ़ोने को शक्ति देते जिसको
असीम प्रेम का भार
एक बार ही सारे परदे
लेते तुम हो उतार।
रखते ना तब घर की ओर
सब धन लेते छीन
बना देते तुम उसे भिखारी
करके संबलहीन।
फिर न उसे होता लज्जा भय
मान और अपमान
और तुम्हीं बन जाते सर्वस
जग में एक निदान।
एक तुम्हीं जिसकी आंखों का
सपना दिन का ध्यान
जो तुमसे ही रखता

परिपूरित कर अपने प्राण।
जिसे मिली है दया तुम्हारी
सीमा कहां लोभ की उसकी–
तुम्हें बसा लेने को
हिय में देता सर्वस त्याग।

68

तुम आज प्रभात में आए थे हे! सुंदर
नव परिजात अरुणाभ हाथ में लेकर।
सोई थी नगरी, नहीं था पथिक कोई पथ पर
अकेले चले गए तुम सोने के रथ पर,
एक बार को रूककर मेरी खिड़की से
देखा था तुमने करूण नयनों से।
तुम आज प्रभात में आए थे हे! सुंदर।
स्वप्न मेरा भरा हुआ था किस मधुर गंध में
घर का अंधेरा कांपा था किस आनन्द में।
धूल में पड़ी थी नीरव मेरी वीणा
बज उठी थी अनाहत किसकी ठोकर से।
कितनी बार सोचा उठ जागूं
आलस छोड़ बाहर पथ पर भागूं
उठा जब, तब लौट गए थे तुम–
अब न भेंट हो पाए शायद जीवन भर।
तुम आज प्रभात में आए थे हे! सुंदर।

69

मैं खेला करता था जब तुम संग
कौन हो तुम नहीं मैं था जानता।
तब न था डर, न थी लज्जा मन में
जीवन चंचल बहता रहता।
सुबह पुकारा जाने कितना तुमने
जैसे मेरे निकट-सखा हो अपने
हंसकर तुम्हारे साथ मारा-मारा
भटका कितना वन-वन।
उस दिन जब तुम गाते रहे थे गान
अर्थ न जाने क्या था।
बस साथ में गांते मेरे प्राण
हृदय नाचता रहता अनजान।
सहसा खेल बाद देखी मैंने कैसी छवि
स्तब्ध है आकाश, नीरव है रवि-शशि
अपने नयन झुकाए तुम्हारे चरणों में
सारा भुवन खड़ा एकान्त में।

वो देखो, खोल दी नाव वह लो
बोझ तुम्हारा कौन उठाए बोलो।
जाना है जब तुम्हें सामने
पीछे को पीछे दो रहने
ढ़ोने चले उसे एकाकी
तट पर छूट गए जो।
घर का बोझ उठा कर
किया जमा तुमने तट पर ला
बारंबार इसी से तुमको
पड़ा लौटना भूल गए तो
बुला रे बुला फिर से नाविक को
जाए बोझ तो तू बह जाने दे
अपने जीवन को उजाड़कर
उनके चरणों में धर दे।

71

चित्त मेरा आज खो गया
मेघों में अनजाने।
कहां भागे चला जा रहा
कहां किधर को जाने।
बिजली वीणा के तारों पर
करती है आघात निरन्तर।
वज्र बज रहा हृदय में
छिड़ते जाने कौन तराने।
ढ़ेर-ढ़ेर गुच्छों में बिखरी
निविड़ नीलिमा की अधियारी
लिपट गयी अंगों से मेरे
छिटक गयी प्राणों में।
नित्य निरत यह पवन महंगी
बन बैठा संगी-साथी
अट्टहास हंस उड़ा जा रहा
रोके एक न माने।

ओरे मौन, न कहना चाहो
न बोले कोई बात
मैं नीरवता की छाती पर
ढोऊंगा दिन-रात
पड़ा रहूंगा मैं मन-मारे
जैसे रहती स्तब्ध निशा रे!
नई धीरता से अपलक
वाले मृदु तारक-पांत
होगी होगी भोर होगी
होगा दूर अंधेरा
आसमान फटकर बरसेगी।
तेरी स्वर्णिम स्वरधारा।
मेरे विहग नीड़ में तब क्या
गंजेगी गीतों में मेरे, तेरी भाषा।
तुम्हारे लिए क्या खिलेंगे न फूल
मेरी वन लता से अवदात?

जब-जब दीप जलाता, बुझ-बुझ जाता
मैं जला-जलाकर हारा
घोर तिमिर में ही जीवन के
आसन रहा तुम्हारा
यह जो लता, सूख गया है उसका मूल
लगती केवल कली, न खिलते फूल,
भेंट व्यथा की इसीलिये
सेवा का एक सहारा।
पूजा का है नेक न गौरव,
पुण्य विभव से हीन,
पहुंचा नाथ! पुजारी पहने
वसन लाज का दीन
कुछ नहीं है, नहीं है कुछ भी
उत्सव में उसके कोई न आया।
बजी न बांसुरी, सजा न घर
अपने टूटे मंदिर में।
रो-रोकर तुम्हें पुकारा

73

मैं तुम्हें रख लूंगा सबकी
नजरों से बचाकर,
ऐसा पूजा का घर कहां मिलेगा
मेरे घर जैसा।
जो तुम मेरे दिन-रात में।
जो तुम मेरे संग-साथ में
दया करो अगर तुम तो
रखूंगा सर माथे पर।
मान दें सकूं तुम्हें वैसा
मैं नहीं हूं वैसा
पूजा करूं उस आयोजन में
नहीं है स्वामी।
जो मैं तुमसे प्यार करूं
बज उठेगी खुद ही बांसुरी
फूल उठेंगे खिल आप ही
उपवन में भरकर।

74

बृज में बज रही बांसुरी
कितना सहज वह गान!
उस सुर में जाग सकूं मैं
दो मुझे वो कान।
नहीं सहज ही अब भूलूंगा
मन-प्राण मतवाला कर लूंगा
मृत्यु के बीच ढ़ंका हुआ है
अंतहीन जो प्राण।

वो तूफान खुशी से झेंलू
मन-वीणा के तारों में
सप्त सिंधु दशों दिशाएं
नाच नहीं झंकार में।
विराम को अलग खींचकर
उस अथाह में ले लो मुझको
अशांति के अन्तर में जहां
शांति है महान।

75

दया देकर अपनी
धोना होगा मेरा जीवन,
नहीं तो क्या मैं कर सकता हूं।
तुम्हारे चरणों में नमन।
तुम्हें देता जब पूजा की डाली
मन का मैल उतर सब जाता
इसीलिए न रख सका प्राण
तुम्हारे चरणों में।

इतने दिनों से नहीं थी कोई
मेरे जीवन में व्यथा।
अंग-अंग में अमिट मलिनता
थी लगी हुई।
आज उस विमल गोद को
व्याकुल हृदय मरता रो-रो
न देना अब न देना तुम
उसे धूल में सोने।

76

सभा शेष होने तक क्या
गा लूंगा अन्तिम गान।
हो सकता है रुंधे कंठ में
मुख तकता मौन निदान।
अभी तक सुर न आया
गा पाऊंगा वो रागिनी?
सांध्य गगन में प्रेम-व्यथा
तानेगी कनक-वितान

अब तक रहा साधता सुर
दिन-रात अपने मन में
भाग्य से यदि वे साधना
पूरी हो जाये इस जीवन में,
इस जनम की पूर्ण-वाणी,
मानस रस का शरत् पद्म या
दूंगा बहा विश्व-धारा से
सागर को अनजान।

77

चिर जनम की वेदना
चिर जीवन की साधना
आग तुम्हारी उठे दहक वह
दया दिखाना न दुर्बल कह
जो ताप सहा चाहूं सब
जले राख हो सारी वासना।

अव्यर्थ जो पुकार, पुकार उससे
व्यर्थ देर अब क्यों?
जो बंधन छाती से जकड़े
पीछे टूट गिरे सबके सब
गरज-गरज कर शंख तुम्हारा
बज-बज उठे जोर से रह-रह
गर्व तोड़कर, नींद छोड़कर
जगे तीव्र चेतना।
चिर जनम की वेदना!

78

तुम जब भी मुझे गाने को कहते
उठती छाती फूल गर्व से,
छलक-छलक आती दो आंखें
ठहर निमेष-विहीन तुम्हारे मुख पर।
कठिन और कटु जो भी है प्राणों में
गला चाहता अमृतमय गान में
सारी साधना, आराधना मेरी
उड़ना चाहती पक्षी-सी फैलाकर पर।

तृप्त मेरे गीतों से तुम हो
लगते भले, भले लगते ये तुमको
जानता हूं इन गीतों के ही बलपर
बैठ जाता तुम्हारे सम्मुख आकर।
मन से जिसका पता तक नहीं पाता
गीतों से उन पदों को छू लेता
सुर के नशे में खुद को भूलकर
कहकर बुलाता बंधु अपने प्रभुको।

79

मेरे मन का सारा प्यार
तुमको जाये प्रभु! तुमको जाये, जाये तुमको।
गंभीर आशाओं की सभी पुकार
जाय प्रभु सिर्फ तुम्हारे कानों में, तुम्हारे ही कानों में,

चित्र मेरा जब जहां भी रहे
तेरी पुकार का उत्तर दे
जितनी बाधा है टूट जाएं सब
प्रभु तुम्हारे आकर्षण में, तुम्हारे ही आकर्षण में।

बाहर की यह भीख भरी थाली
अब की हो जाये बिल्कुल खाली।
अन्तर मेरा चुपचाप जाये भर
प्रभु तुम्हारे दान में, तुम्हारे ही दान में।

हे! बंधु मेरे, हे! अन्तर तर
इस जीवन में जो भी है सुंदर
सब कुछ आज बज उठे सुर में
प्रभु तुम्हारे गीतों में, तुम्हारे ही गीतों में।

80

वो दिन के समय आये थे
मेरे घर पर।
कहा था– बस एक कोने में
पड़ा रहूंगा।
कहा था– पूजा अर्चना में
हम सहायता तुमको देंगे
जो भी मिले प्रसाद रूप में
ले लूंगा पूजा के बाद।

इसी तरह दरिद्र-क्षीण
मलिन वेश में
दुबके रहे एक कोने सकुचाये।
रात वो हो उठे प्रबलतर
बैठे वो पूजा घर भीतर
लेने लगे मलिन हाथों से
हरने भोग-प्रसाद।

81

वे वसूलते राह बीच
महसूल तुम्हारे नाम।
घाट पहुंच देखूं, खेवा को
भी न रह गया दाम।
स्वांग तुम्हारा कामों का कर
नाश कर रहे धन-मन सबकुछ
जो भी थोड़ा पास है मेरे
उसका नहीं छदाम।

आज मैंने पहचान लिया है
छद्मवेशी उस दल को
वे भी जान चुके है मुझको
अबल-शक्तिहीन जान।
दिया फेंक काट रूप को
लाज-शरम कुछ न रही अब तो
अकड़ खड़े हो आज राह में
मुझे लिया है थाम।

82

इस चांदनी रात में जगे मेरे प्राण,
पास तुम्हारे क्या मिलेगा आज स्थान।
देख सकूंगा वह अपूर्व मुख
रहे देखता हृदय उत्सुक
बार-बार चरणों में लिपटकर
लौटेगें मेरे अश्रुसिक्त गान?

साहस कर तुम्हारे चरणों में
रख न सका अपना अन्तर मैं
पड़ा हुआ हूं माटी में भगवन्
लौटा न देना मेरा दान।

तुम जो मेरा हाथ पकड़कर
पास आकर उठा लो मुझको
प्राणों की रिक्तता-उसी क्षण
हो जाये अवसान।

83

तय था एक तरी में हम-तुम दो जन
बहते जायेंगे बहते ही केवल,
त्रिभुवन में न कोई पाएगा जान जान
किस तीरथ को कहां दिए हम चल
उस अपार सागर के बीचोबीच
कानों में तुम्हें सुनाऊंगा मैं इक गीत,
लहरों की तरह भाषा बंधनहीन
वह रागिनी सुनोगे चुप हंस निर्मल

समय नहीं क्या मिला आज भी
काम पड़ा है बाकी
सुनो, संध्या उतर रही सागर तीरे।
खोल पंख मलिन किरणों में
सिंधु पार के पंछी।
लौट आये सब अपने-अपने बसेरे।
कब तुम आओगे नाव घाट पर
मेरा यह बंधन देने को काट।
डूबते सूरज की अग्रिम आभा सी
निरुद्देश्य जाय नाव निशीथ में दे चल।

84

मेरे अकेले घर की ओट तोड़कर
खुले जगत में
प्राणों के रथपर बैठ बाहर
निकलूंगा कब मैं।
प्रबल प्रेम में सबके बीच
लौटूंगा मैं सारे कामों में
मेले के पथ पर तम्हारे साथ
होगा मिलन मेरा।
प्राणों के रथ पर बैठ बाहर
निकलूंगा कब मैं।

निखिल आशा-आकांक्षा-भय
दुःख में और सुख में
कूद झेल लूं तरंग उसकी
अपने वक्ष स्थल में।
भूले-बुरे को यों झकझोरें
हिय में जग उठूं तुम्हारे
सुनूं वाणी विश्व-जन की
विश्व के कलरव में।
प्राणों के रथ पर बैठ बाहर
निकलूंगा कब मैं।

85

ऐसे और अकेले नहीं
लौटना है बस,
अपने मन के कोने-कोने में
सिमट मोहवश।
अपनी बांहों के बंधन में तुमको,
लिपटा लघु करना चाहा जो
अपने-आपको बांधा केवल
अपने ही बंधन में।

जब तुम मुझे मिलोगे
इस निखिल भुवन में
पाऊंगा हिय में हृदयेश्वर!
उसको उसी क्षण मैं।

यह चित्त वृन्त है केवल
लगा उसीपर विश्व कमल
और उसी पर पूर्ण प्रकाश
दिखाओं हँस हँस।

86

मुझे जब जगाया तुमने नाथ
तो लौट न जाओ, लौट न जाओ
डालो कृपा दृष्टि एक बार।
निविड़ वन की शाख-शाख पर
आसाढ़ी घन बरसे झर-झर,
बदली से अलसाया ये मन
सो रहा था रात।
लौट न जाओं, लौट न जाओ
डालों कृपा दृष्टि एक बार।
विराम हीन बिजली की कड़क से
आज उनींदे प्राण!
वर्षा की धारा से मिलकर
गाना चाहे गान।
हृदय मेरा अश्रु जल से
तिमिर तल से बाहर होकर
गगन ढूंढ रहा व्याकुल होकर
बढ़ाकर दोनों हाथ।
लौट न जाओ, लौट न जाओ
डालों कृपा दृष्टि एकबार।

87

चुन लो मुझे वृंत से चुन लो
और विलम्ब न कर।
जी में लगता है डर इतना
कहीं न जाऊं माटी में झर
फूल तुम्हारी माला में यह
स्थान पायेगा जानूं ना यह
फिर भी वह आघात तुम्हारा
उसके भाग्य रहे।
चुन लो मुझे वृंत से चुन लो
और विलंब न कर

88

चाहता हूं मैं सिर्फ तुम्हें
तुम्हें ही करता प्यार
यह बात सदा ही मन में
कर सकूं स्वीकार
और चाह चाहे जो लेकर
घूम रहा मैं दिन-वासर।
यह सब झूठ, झूठ है यह सब
तुम्हें ही करता प्यार।

रात जैसे छिपाकर रखती
आलोक ज्योति को निर्मल
वैसे ही गहन मोह बीच में
तुम्हें ही करता प्यार।
शांति को तूफान जब तोड़ता
तब भी प्राण शान्ति चाहता
वैसे तुम्हें दुःखी करता हूं
फिर भी करता प्यार।

89

मेरा प्रेम नहीं है कायर
नहीं है हीनबल।
वह क्या व्याकुल होकर केवल
बरसायेगा अश्रुजल।
मन्द-मधुर सुख की शोभा
प्रेम को क्यों करे निद्रातुर
साथ तुम्हारे जगना चाहे
वह आनंद में पागल।

जब नाचते भीषण रूप धर
लगे ताल आघात तीव्रतर
भागे भय लज्जा में पड़कर
दुविधा तक मेरी है विह्वल।
यही प्रचंड मेरे मनभाये
मेरा प्रेम वो अपनाएं
आशा के क्षुद्र स्वर्ण को
भेज रसातल में।

90

अभी सह लूंगा आघात और भी
सह लूंगा में प्रहार।
और कठिन सुर में छेड़ों
मेरे जीवन की झंकार।
राग जगाते जो प्राणों में
बजे नहीं वो चरम तान में
निठुर मूर्च्छना के गीतों से
मूर्ति करो संचार।

लगे नहीं उस पर प्रभु जैसे
कोमल-करूणा केवल
मृदु-मधुर सुर के कौतुक से
प्राण करो मत निष्फल,
सर्द निःश्वासें जल-जल जाएं
हवा गरजकर लहर उठाएं
जगाकर यह पूरा आकाश
परिपूर्णता तुम करो प्रसार।

91

यही किया है अच्छा हे! निर्दयी
यही किया है अच्छा
इसी तरह मेरे हृदय में
तीव्र आग लगाओ।
सुलगाये बिन नहीं धूप यह
गंध नहीं लुटाता महमह
बिना जलाये ये दीपक भी
न दे पाता प्रकाश

चेतनहीन पड़ा रहता है
मेरा चित्र कहीं जो
चोट, अरे वह शुभ परख है।
पुरस्कार उचित वही तो।
अंधकार के जाल मोह से
आंखों से तुम नहीं दिखते
बिजली से ज्वालामय कर दो
मेरा मलिन जिया।

देवता जान, तुम्हें दूर रहता हूं
अपना जान नहीं कर पाता आदर,
पिता मान प्रणाम करूं चरणों में।
बन्धु मान; दो हाथ न पाता धर,
जहां नेह से खींच तुम अपने आप
मेरे होकर आए तुम चुपचाप
वहां सुख से लगा हृदय से अपने
अपना पाता तुम्हें न साथी कहकर,

भाई तुम हो भाईयों के बीच प्रभु
उनकी ओर देख न पाता तब भी
बाट बराबर उनमें अपना वैभव
क्यों न तुम्हारी मुट्ठी देता हूं भर।
दौड़े आते सबके सुख में दुख में
खड़ा न होता तेरे ही सम्मुख मैं
प्राण सौंपकर कान्ति विहीन कामों में
कूद न पाता जहां प्राण का सागर।

93

तुम जो कर रहे काम, उसमें
मुझे क्या हाथ बंटाने दोगे
काम के समय क्या तुम
मुझे जगा न दोगे?
भले बुरे उत्थान-पतन में
जोड़-तोड़ के परिवर्तन में
तुम्हारे पास खड़ा रहकर
तुम्हारे साथ ही परिचय।

सोचा था निर्जन छाया में
नहीं किसी का आना-जाना
सांझ ढ़ले मेरा तुम्हारा
वही होगा जानना-पहचानना।
अंधकार में यूं अकेले
वह मिलना तो स्वप्न के जैसा
बुलाओं मुझे उस हाट में
चल रहा जहां क्रय-विक्रय।

94

जहां जगत के साथ तुम करते नित्य विहार
मेरा भी सहयोग वहीं पर साथ तुम्हारे प्यार!
वन में कहीं न कहीं विजन में
और न मेरे अपने मन में
सबके जहां अपने हो तुम, प्रिय
स्वजन मेरे भी वहीं उदार।

जहां सभी के लिए खड़े तुम अपनी बाहें पसार
वहीं जगेगा मेरे हृदय का प्रेम पसार,
प्रेम न घर में छिपे-छिपाये
प्रखर ज्योत सा बिखर-बिखर जाये
सबके जहां आनंद-घन तुम,
मेरे भी तुम हो सुख सार।

95

पुकारों, पुकारों लो तुम मुझे पुकार
जहां तुम्हारा स्निग्ध शीतल
और पवित्र आधार।
ओछे दिन ये क्रान्ति ग्लानिकर
जीवन को करते धूल-धूसर।
प्रतिपल मनके विचारों में
मैला सहसा विकार।
मुक्त करो, मुक्त करो, करो मुझको तुम मुक्त।
जहां तुम्हारा मौन उदार
और अनंत आधार।
नीरव रात में वाक्यहीन हो
बाहर में वो जाये खो
मेरे अन्तरतम प्रकट हो
अखण्ड आकार में।

96

होती तुम्हारी लूट जहां भुवन पर
मेरा चित्त पहुंचे वहां क्योंकर?
स्वर्णिम घट में सूरज-तारा
उलीच रहे ज्योति की धारा
अनन्त प्राण बिखर रहे गगन में।
मेरा चित्त पहुंचे वहां क्योंकर?

जहां बैठते हो तुम दानी बनकर
मेरा चित्त पहुंचे वहां क्यों कर?
ढ़ाल नये रस में अपने को
नित जो लुटा-लुटा देते हो
वहां न क्या पहुंचेगी पुकार जीवन भर
चित्त मेरा पहुंचे वहां क्योंकर?

97

फूलों की तरह आप खिलाओं गान
हे मेरे नाथ, यही तुम्हारा दान।
वो फूल देख खुश हो मैं उड़ता हूं,
अपना कह उपहार वही ले आता हूं।
स्नेह जतन से उठा लेते उसे हंसकर
कृपा करके रख लेते मेरा अभिमान।

बाद अगर पूजा-वंदन के अन्त में
ये गीत बिखर जाये यूं धूलिकण में
तो भी क्षति न कुछ-करतल में तुम्हारे
कितने धन बनते, बनकर मिट जाते
खिलकर मेरे जीवन को वे एक क्षण में
सदा-सदा के लिये धन्य कर जाते प्राण।

98

रहूं सदा उस मुख की ओर निहारे
यह इच्छा मेरी पूरी करो हे! प्यारे
रहूं देखता अपलक नैन बिछाये
केवल अपने मन की लौ को रहूं लगाये
व्यथा, कामना, कामकाज प्रतिदिन
सबकी लगी भीड़ में एक किनारे

अग्नि इच्छा दौड़े विभिन्न दिशा में
एक इच्छा मेरी पूरी करो हे! भगवन्।
रहे रात पर रात सदा वो जागी
जला एक की अबूझ व्यथा की आयी
दिन पर दिन वह उसी को गूंथे
एक सूत्र में एक आनन्द के गम में

99

आया फिर आषाढ़ गगन में छाया
सुवास आ रही वर्षा की पवन में।
यह मेरा पुरातन हृदय आज
फिर नाचने लगा पुलक में।
नये सजल मेघ की ओर देखकर
आया फिर आषाढ़ गगन में छाया।

रह-रह कर दूर खेतों पर
छांव मेघ की पड़ती नव वृण दल पर
'आया वो आया' यह कहते प्राण
'आया वो आया' यह उठ रहा गान।
नयनों में आया, हृदय बीच समाया
आया फिर आषाढ़ गगन में छाया।

100

आज मानव में वर्षा का रूप निखरता
चले घोर निविड़ साज में गरजता।
हृदय उसका नाच उठा है भीगा
छप-छप-कर छापे चलती सीमा।
किस ताड़न मेघ से मेघ की
छाती से छाती मिल क भयंकर बाजे।
आज मानव में वर्षा का रूप निखरता।

पुंज-पुंज में दूर-दूर अनजाने
दल-दल में चलता है क्यों, कोई न जाने।
पता न कुछ भी किस महा-अद्रि के तल में
गहन सावन गल जायेगा जल में।
पता नहीं उसे समारोह में उसके
जीवन-मरण कौन सा भीषण बसता।
आज मानव में वर्षा का रूप निखरता।

101

ईषान कोण में वह जो तूफानी वाणी
गुरू-गुरू कर न जाने क्या करती कानाफूसी।
क्षितिज ओट में बैठ कौन सा भावी
स्तब्ध तिमिर में ढोता भाषाहीन व्यथा।
काली कल्पना की निविड़ छाया के नीचे
घिर उठा किस आसन्न कार्य में
आज मानव में वर्षा का रूप निखरता।

102

हे देव, भर दो लबालब मेरे तन-प्राण
चाह रहे तुम करना किस अमृत का पान।
मेरे नयनों को तेरे निखिल रूप की रचना
देख लेने की होती मन में अभिलाषा।
तुम बैठे मौन स्वर मेरे ही मुग्ध श्रवण से
सुन लेना क्या चाहते अपना मधुर गान।
हे देव भर दो लबालब मेरे तन-प्राण
चाह रहे तुम किस अमृत को करना पान।

मेरे चित्त में आती यह जो सृष्टि तुम्हारी
रच देती है एक अनूठी वाणी बलिहारी
मिलकर साथ उसी के दुर्लभ, तुम्हारी प्रीत
जगा-जगा जाती मेरे अंतर के सारे गीत
एक मधुर रस में अपने को तुम देख रहे हो
अपने को पूरा का पूरा मुझको ही देकर दान।
हे देव, भर दो लबालब मेरे तन-प्राण
चाह रहे तुम करना किस अमृत का पान।

103

एक ही हे साध इस जीवन में
तव आनन्द गूंजे गीत की धुन में।
गगन तुम्हारा, मुक्त है ज्योति की धारा
द्वार संकरा देख लौटे न जाये मनमारा
छह ऋतुएं सहज नृत्य में आएं
नित्य नये शृंगार में अन्तर में।

आनन्द तुम्हारा मेरे अंग में; मन में
बाधा जो न लगे किसी आवरण में।
आनन्द तुम्हारा परम दुःखों में मेरे
जागे जैसे पुण्य प्रकाश बिखरे।
दूर सारी जीवन की दीनता करके
फूट उठे सब कामों में पल-पल में।

104

अकेला मैं बाहर निकला
तुमसे अभिसार हेतु।
साथ-साथ कौन चलता मेरे
नीरव अंधकार में।
छोड़ना चाहता बहुत कुछ कर
मुड़ चलूं मैं कि खिसक पड़े झट
सोचूं अब तो टली बला
मगर तुरन्त ही देखूं उसको।

धरती को धमसाता चलता वो
ऐसी उसकी चंचलता
सब बातों में अपनी ही
कहने की उसे विकलता।
वह जो मेरा 'मैं' ही है प्रभु
हया उसे न कभी रही है
उसे लिये किस मुंह से मैं
जाऊं तेरे द्वारे।

105

अपलक आंखों देख रहे तुम सबको उत्सुक प्राण!
सब के बीच मुझे भी दो छोटा सा स्थान।
नीचे, नीचे से नीचे इस धूल भरी धरती पर
नहीं आसन का लगता दाम नहीं कोई कर
जहां एक से भेदरहित है मन और अपमान
सबके नीचे मुझे भी दो छोटा सा स्थान।

जहां बाहर का आवरण रहता
जहां नग्न परिचय अपने अन्तर का।
कुछ भी नहीं जिसे कहूं मैं मेरा
ढंकता नहीं यह सत्य जहां अपने को
वहीं खड़े होकर अपनी यह बिछा दासता नंगी
भर-लूंगा उसमें मैं प्रभु का वांछित परम दान।
सबके बीच मुझे भी दो छोटा सा स्थान।

और अब न मैं आपको
अपने सर ढोऊंगा।
और अब न मैं अपने द्वारे
कंगला होकर खड़ा रहूंगा।
चरण तुम्हारे रख यह बोझा
निकल पड़ूंगा मैं बे-परवाह
कुछ न खबर लूंगा मैं उसकी
कोई बात न मैं बोलूंगा
और अब न मैं आपको
अपने सर पर ढ़ोऊंगा।

वासना मेरी जिसको भी छू लेती हैं
पलक झपकते जोत बुझा देती है
वो पापन जो दो हाथों में
लाई है जो लूंगा न भूलकर
जिसमें प्रेम न हो तुम्हारा
उसे न मैं और सहूंगा।
और अब न मैं आपकों
अपने सर पर ढ़ोऊंगा।

हे चित्त! मेरे पुण्य तीर्थ में
जागो तुम मंथर
इस भारत के महा मानव के
सागर तट पर।
यहां खड़े हो बढ़ा बाहु दो
मनुजदेव को नमस्कार कर,
मुक्त छन्द में महा आनन्द से
वंदन उसका बार-बार कर।
ध्यान मग्न यह जो है भूधर
नदी जाप माला धृत-प्रान्तर,
यहां नित्य हेरो जी भर
पवित्र धरणी को
इस भारत के महा मानव के
सागर तट पर।

कोई न जाने किस आह्वान से
कितनी मानव-धारा,
प्रबल स्त्रोत से कहां से आकर
सागर में हुई हारा।
यहां आर्य है, यहां अनार्य है
यहां है द्राविड़-चीन
शक, हूण, मुगल पठानी दल
एक देह से लीन।

पश्चिम ने आज खोले द्वार
वहां से सब लाते उपहार
ले-दे मिलकर यहीं रहेंगे बना
इसे अपना सपना घर

जाये न कोई लौट
इस भारत के महा मानव के
सागर तट पर।

धर रणधारा विजय गीत गा
शोर मचा उन्मादी
लांघ मरुस्थल पर्वत; जंगल
लाए थे बर्बादी
वो सब मेरे बीच बिराजे
कोई दूर नहीं है
मेरे ही अन्तस में गूंजे
वो ही विचित्र सुर।

अरे रूद्रवीणा तू बज री!
दूर खड़े जो छिन से अब भी
बंध भेदकर वो आएंगे
खड़े होंगे घेरकर
इस भारत के महा मानव के
सागर तट पर।

यहां एक दिन विराम विहीन
महा ओम की वाणी
हृदय तंत्र में एक मंत्र में
गूंजी थी कल्याणी।
तप के बल में एक अनल में
बहु की आहुति देकर
भेद मिटाकर जाग उठा था
एक असीमित अंतर।
उसी साधन, उसी आराधना का
यज्ञशाला का खुला द्वार,
यहां सबों का मिलना होगा
आनत कर सर।
इस भारत के महा मानव के
सागर तट पर।
उसी हवन की अग्नि में जल उठी
दुख की रक्तिम रेखा।

सहना होगा, दहना होगा
भाग्य में जो है लिखा।
यह दुख आज ढ़ो ले मेरे मन
सुनले वो पुकार।
सभी लाज भय करो रे! जय
सब अपमान मिटा।
यह दुस्सह दुख दूर हटेगा
फिर तो विशाल प्राण जन्मेगा।
बीते रजनी, जागे जननी
विपुल नीड़ भर।
इस भारत के महा मानव के
सागर तट पर।

आओ आर्य, अनार्य पधारो
हिन्दू-मुस्लिम भाई-भाई
आओ, आओ हे! अंग्रेज आज तुम
आओ बंधु ईसाई
आओ ब्राह्मण, कर पवित्र मन
कर सबके घर लाओ
आओ पतित, पुलकित चित्त
सब अपमान भुलाओ।
मां के अभिषेक में आओं, आओ झट
भरा नहीं गया मंगल घट
सबके सरस-परस से पावन तीर्थ सलिल भर
इस भारत के महा मानव के
सागर तट पर।

108

जहां रहते सबसे अधम दीनों के भी दीन
वही तो राजित चरण तुम्हारे
सबसे नीचे सब के पीछे
सब धाराओं के बीच।
जब भी तुम्हें नवाता माथा
न जाने कहां प्रणाम थम जाता
अपमानों में चरण तुम्हारे जहां उतर आते है
नहीं पहुंचता मेरा नमन वहां पर।
सबसे नीचे, सब के पीछे
सब हाराओं के बीच।

अहंकार छन पाता जहां लगाते फेरा
भूषण-हीन दीन-दरिद्र बन बेचारा
सबसे नीचे, सबके पीछे
सब हाराओं के बीच।
धन-मान का जहां भरपूर खजांना
वहीं तुम्हारा साथ चाहता पाना
संगी बन हो जहां संगीहीन के घर-पर
हृदय न मेरा वहां सकता उतर
सबसे नीचे, सबके पीछे
सब हाराओं के बीच।

हे! मेरे अभागे देश किया जिनका तूने अपमान
अपमानों में होना होगा उनके साथ समान।
जिन्हें मनुज के हक से किंचित
कर रखा है तुमने वंचित
सम्मुख रखकर खड़ा; न फिर भी गोद दिया स्थान
अपमानों में होना होगा उनके साथ समान।
मनुष्य के स्पर्श को प्रतिदिन रख अपने से दूर
उनके प्राणों के भगवन् से घृणा की भरपूर।
रुद्र कोष में विधि के पड़कर
बैठ अकाल द्वार पर गड़कर
सबके साथ बैठ-बांट करना होगा अन्न-पान।
अपमानों में होना होगा उनके साथ समान।
अपने आसन से जहां उन्हें जबरन दिया उतार
शक्ति को अवहेलना से दूर किया दुत्कार,
पैरों तले बेरहम पिसकर
जात मिली खाक में घिसकर
आओ उतर उसे लो आओ, वरना नहीं कल्याण
अपमानों में होना होगा उनके साथ समान।
जिन्हें ढकेल गिराते नीचे, वे बांधेंगे तुमको नीचे
छोड़ा पीछे जिनको तुमने, खींच रहे हैं तुमको पीछे।
जिन्हें अज्ञान अंधकार से ओट किए रहते हो ढांके
मंगल ढ़ंक तुम्हारा रचते वही घोर व्यवधान
अपमानों में होना होगा उनके साथ समान।
सदियों से लदता आता सिर असम्मान का भार
फिर भी नर-नारायण को न करते नमस्कार
तब भी नीचे नजर झुकाये
और अभागे देख न पाये।

उतर आये हैं धूल पर हीन पतित के भगवान
अपमानों में होना होगा उनके साथ समान।
देख नहीं पाते तुम मृत्युदूत खड़ा है द्वारे
देख जाति का अहंकार ललाट अभिशाप लिखा रे
सबको अब भी यदि न पुकारो
रहे अलग जो खड़े किनारे
अपने को घेरे चौतफा तान-तान अभिमान
एक समान राख कर देगी, फिर तो मौत-मसान।

110

धरे रहो धीरज मत छोड़ो
होगी तेरी विजय।
फटा जा रहा गहन अंधेरा
अब न कोई भय।
देख उधर पूरब की ओर
गहन वन के अन्तराल में
भोर का तारा हुआ उदय
अब न कोई भय।
ये सारे हैं केवल निशाचर
विश्वास नहीं है अपने ऊपर
निराशा, आलस और संशय
ये प्रभात के नहीं।
दौड़कर आ सारे बाहर
देख, देख सिर के ऊपर
हो रहा गगन ज्योतिर्मय।
अब न कोई भय।

111

मेरा हृदय आज है भरा अब तुम
जो जी-चाहे वो करो।
इसी तरह जो मन में विराजो
बाहर से मेरा सर्वस हरो।
सारी प्यास का जहां पर अवसान
वहां यदि तुम पूर्ण करो प्राण,
इसके बाद धधकते मरुस्थल में
चाहे जितनी तीखी धूप धरो।
यह जो खेल खेला है इतने छल से
उसी खेल को करता हूं मैं प्यार।
एक तरफ भिगोते नयन अश्रुजल से
दूसरी तरफ जगा देते तुम हंसी।
जब मैं सोचता सब खो गया मेरा
गहन ढूंढकर उसे पास ही पाया
जब गोद से छिटक दूर जो करते
लगा हृदय से लेते फिर आकुल हो।

112

गर्व से कभी लेता न नाम, हे अन्तरयामी
मेरे मुंह पर क्या सोहे भला नाम तुम्हारा।
मेरी हंसी उड़ाकर जब सब मुझे लजवाते
सोचूं भला कंठ से कैसे जाएगा भी नाम पुकारा।
तुमसे बहुत दूर रहता हूं एकाकी
यह जानना मेरा रह न जाए बाकी।
नाम-गान के छद्मवेश में कहीं न परिचय दे दूं
मन-मन में मरता हूं मैं इसी लाज का मारा।
अहंकार की मिथ्या से कृपा कर मुझे बचाओ
रखो वहीं जहां है मेरा स्थान।
और सभी की नजरों से दूर हटाकर
अपनी झुकी निगाहों का दो दान।
मेरी पूजा दया मांगने भर को
मान न उसको कहीं किसी के घर हो
नित्य मैं बैठ धूल पर तुमको विकल पुकारूं
रोज नया, अपराध किए बिचारा।

113

कौन कहे सब छोड़ जायेगा
मौत जब थामेगी हाथ तेरा।
जीवन में जो तूने लिया है
उसे मरण में ले चलना होगा।
इस भरे भण्डार में आकर
खाली ही चल दोगे आखिर।
लेने को जो कुछ भी है तेरा
भली तरह से ही लो तब तो।
कूड़ा-करकट का यह बोझा
जो तूने दुनिया में बटोरा
बच जाओगे, जाने की बेला
सब क्षर कर जाओ गिन-गिन
आये हैं इस धरती पर
सजधज ले श्रृंगार सजा कर
राजा के वेश में चलो रे! हंसते
मृत्यु पार के उस उत्सव में।

114

नदीपार के इस आषाढ़ी
प्रभात में
ले रे मन, लहरें खींच
अपने प्राणों में।
हरा-नीला सोने से मिलकर
बिखराया है अमृत जो भर
जगा दिया अम्बर के नीचे
गहरी वाणी में।
लेरे रे मन, ले रे खींच
अपने प्राणों में।
इसी तरह चलते-चलते
भव के पथ पर
दोनों ओर जो फूल खिलें
चुन लेना उनको।
उनको अपनी चेतना में
गूंथ लेना दिन-रात में
हर दिन जलन कर करके
भाग्य बनाना।
लेरे मन, लेरे खींच
अपने प्राणों में।

115

मरण जिस संध्या को
पहुंचेगा तुम्हारे द्वार
उस दिन तुम उसे क्या धन दोगे
भरा लबालब मेरा अन्तर
मैं उसके सम्मुख दूंगा धर
खाली हाथ न जाने दूंगा
यह दूंगा उपहार
मरण जिस दिन आयेगा मेरे द्वार।
कितनी शरद-बसन्त की रात
कितनी संध्या कितने प्रभात
रस बरसाते कितना जीवन घट में
जाने कितने फूल और फल
भर देते मन दो प्रतिपल
दुख-सुख के छाया
तट की आहट में।
जो कुछ है मेरा संचित धन
इतने दिनों का हर आयोजन
अंतिम दिन में उसके आगे
दूंगा सभी पसार
मरण जिस दिन आयेगा मेरे द्वार।

116

कृपा करके, चाह कर खुद छोटे बनकर
आते हो तुम मेरे अकिंचन के घर।
इसीलिये माधुरी तुम्हारी
भूख आंख की हरती सारी।
जल में थल में दरस दिखाते
क्या-क्या रूप धर कर।
बन्धु, पिता होकर, जननी बनकर
आते तुम बन छोटे हिय में।
मैं भी क्या अपने ही हाथों
तुच्छ करूंगा विश्वनाथ को–
जनाऊंगा जानूंगा तुम्हें
इसी क्षुद्र परिचय पर।

117

हे नाथ, मेरे इस जीवन की
अन्तिम परिपूर्णता!
मरण, मेरे मरण तुम
कहो अपने अंतर की।
सारा जीवन तुम्हारी ही खातिर
बिता रहा मैं जग कर
तुम्हारी खातिर ढोता फिरता
सुख-दुख की वेदना को।
मरण मेरे मरण तुम
कहो अपने अन्तर की।
जो पाया, जो मैं बन पाया
जो भी है मेरी आशा,
बिना जाने ही दौड़े तुम्हारे पीछे
मेरा प्यार यह सारा।
मिलन होगा तुम्हारे साथ से
एक शुभ दृष्टिपात में
जीवन-वधु बनेगी तुम्हारी
नित्य अनुगता।
मरण, मेरे मरण तुम
कहो अपने अन्तर की।
वरमाला गूंथी है मैंने
मेरे अन्तरतम में।
कब नीरव हंसी-मुंह ले
आओगे वर के वेश में।
उस दिन मेरा रहेगा न घर
कौन है अपना कौन है पर
निर्जन रात में पति के साथ में

मिलेगी पतिव्रता।
मरण मेरे मरण तुम
कहो अपने अन्तर की।

118

राही हूं मैं राही
रख न सकेगा कोई मुझे पकड़कर।
सुख दुख के सब ये झूठे बंधन
होगा कहां पड़ा तो यह घर पीछे
बोझ विषय के मुझको खीचें नीचे
टूट गिरेंगे वह सब यहीं बिखरकर।
राही हूं मैं राही
राह चलता गीत मैं गाता जी भर।
देह-दुर्ग के खुलेंगे सारे द्वार
बंध वासना के टूटेंगे सारे,
भले बुरे को कर जाऊंगा पार
चलना हे लोक-लोक में निरन्तर।
राही हूं मैं राही।
खिसक पड़ेगा भार लदा जो सर पर।
आकाश मुझे दूर अनंत में पुकारे
भाषाहीन अजाने गीत सुना रे
सुबह-सांझ खींचें प्राणों को मेरे
किसकी बंशी का यह गहरा स्वर।
राही हूं मैं राही।
निकल बाहर न जाने किस भार में
तब न कोई चिड़िया कहीं चहकी थी
न जाने कितनी रात थी बाकी
केवल अपलक आंख एकाकी,
जाग रही थी अन्धकार में।
राही हूं मैं राही।
किस दिनान्त में पहुंचूंगा मैं किस घर।
कौन तारिका दीया वहां जलाती

पवन कौन सी कुसुम-गंध से रोती
कौन है वहां दो स्निग्ध आंख गड़ाये
अनादिकाल से देख रहा मुझे ही।

उड़ा पताका बादल भेदी रथपर
वहां रहे वे, वहां देख लो पथ पर,
तुम्हें खींचनी होगी रस्सी लपको
घर के कोने बैठे कहां अचल हो
कूद पड़ो इसी भीड़ में मिल लो
किसी तरह से अपनी जगह बनाकर।

पड़ा रह गया काम कौन सा घर का
सारी बात भुलानी इधर-उधर का।
अपना सारा तन-मन से देकर खींचों
तुच्छ प्राण की माया छोड़ तुम खींचों
खींच ले चलों अंधेरे और उजाले में
नगर-ग्राम से जंगल से पर्वत पर।

घूम रहा जो पहिया रथ का घर्घर
छाती में सुन पाते क्या उसका स्वर।
प्राण रूधिर में नहीं नाचते हैं क्या
मृत्युंजयी संगीत नहीं मन गाता?
प्रबल बाढ़ की गति से क्या आकांक्षा
नहीं भागती विपुल भविष्य तक पर?

120

भजन-पूजन साधना आराधना
सब कुछ रहें धरे।
बंद द्वार मंदिर के कोने
क्यों पड़ा तू अरे!
अंधकार में छिपकर अपने मन में
किसको तू पूजता है चुपचाप
आंख खोल तू देख अरे
देवता घर नहीं हैं परे।

वे गये जहां गोड़कर माटी
हल चलाते किसान;
पत्थर तोड़ बनाते पथ हैं
खटते सांझ विहान।
धूप-वर्षा में सबके साथ
धूल सने हैं उसके दोनों हाथ।
तजकर पवित्र वसन उसीसा
आ रे! धूल भरे!

मुक्ति खोजकर कहां पाएगा
रहती मुक्ति कहां?
प्रभु तो सृष्टि श्रृंखला में
खुद ही बंधे यहां।
छोड़ रे ध्यान, तज दे डाली के फूल
फटने दे वस्त्र, लगने दे धूल
कर्मयोग में उसके संग-संग
रहे पसीना झड़े।

121

सीमा में असीम तुम
बजाओं अपनी स्वर लहरी।
मेरे अन्तर तुम्हारी ज्योति
इसीलिये इतनी गहरी।
जाने कितने वर्ण-गंध में
जाने कितने गान-गंध में
जाने कितने गान-छन्द में
हे अरुण, तेरी रूपों की लीला से
जागे हृदय की नगरी।
मेरे अन्दर तुम्हारी शोभा
इतनी सुमधुर।
तुम्हारा-मेरा मिलन होने पर
सारे भेद जाते खुल-खुल
विश्व सागर की लहरें खेलें
पुलक-पुलक पुलकाकुल।
नहीं तुम्हारी ज्योति की छाया
मुझमें वह पाती है काया
हो जाती मेरे अश्रुजल में
वो सुंदर-विधुर।
मेरे अन्दर तुम्हारी शोभा
इतनी सुमधुर।

122

मुझपर ही आनंद तुम्हारा निर्भर
इसीलिये तुम आये नीचे बेकल।
मैं न होता, तब हे! ईश्वर
प्रेम तुम्हारा हो जाता जो निष्फल।
मेला यहां बसाया मुझको लेकर,
मेरे हिय में इस का खेल निरंतर।
धरे विचित्र रूप मेरे जीवन में
तुम्हारी ही चाह लहराती छल-छल।

तभी तो तुम राजाओं के राजा होकर
फिर भी मेरे ही अन्तर की खातिर
फिरते धरते मन-हर वेश धरके
प्रभु, नित्य जागा करते हो अस्थिर।
इसीलिए प्रभु नीचे आये बेकल,
भक्त-हृदय पर तेरा ही प्रेम छाये
वहां तुम्हारी मूरत युगल-मिलन की
वहीं पूर्ण प्रकाश से झलमल-झलमल।

मान का आसन, सुख की शय्या
नहीं है लिये तुम्हारे।
सब छोड़ आज खुश होकर।
निकलो अपने पथपर।
आओं बंधुओं, सभी मिल-जुलकर
संग-संग हम निकले बाहर,
आज यात्रा करेंगे हम सब
उपेक्षितों के घर की।

पहनेंगे निंदा के गहने
और कांटों का कन्ठहार,
माथे पर रख लेंगे हम
अपमानों का भार।
दुखियों का जो अन्तिम आलय
उसी धूल पर रखकर माथा
त्याग का सूना पात्र लेकर
आनंद सुधा से भरलें।

124

प्रभु के घर से जिसदिन आया
वो वीरों का दल
उसदिन कहां रहा छिपा
वह विपुल बल।
कवच कहां ये अस्त्र कहां थे
दीन-क्षीण अवलंबहीन से
चारों-दिशा से आता
विपदाघात अनर्गल।
प्रभु के घर से जिसदिन आया वो वीरों का दल!
प्रभु के घर में लौटा जिसदिन
वो वीरों का दल,
उसदिन कहां फिर छिप गया
वह विपुल बल।
बाण कृपाण कहां सब छूटा
होठों पर हास शांति का फूटा
चले गये छोड़ सारे जीवन का
सारा – जीवन – फल।
प्रभु के घर में लौटा जिसदिन
वों वीरों का दल।

125

सोचा मन में, जो होना था उसके अन्त में
यात्रा मेरी जैसे रूक गई है आकर।
न है राह, न है कोई कण
जो कुछ था पाथेय चूक गया आज,
नीरव अंतराल में जाना होगा।
जीर्ण जीवन के छिन्न मलिन वेश में।
यह क्या देखूं कैसी रह अनंत लीला
बहती क्या नूतनता अंत:शीला।
पुरातन भाषा जब भर आये मुंह में
नव गायन गूंज उठ अन्तर में।
पुराना पथ खत्म हो गया जहां पर
नये देश में आये वहीं मुझे लेकर।

126

मेरे गीतों ने उतार दिये
सारे अलंकार
पास तुम्हारे न रखा गर्व का
कोई अहंकार।
ओट बीच की बनकर गहने
बाधा देते अपने मिलन में,
ढंक देती है बात तुम्हारी
उसकी मुखर झंकार।

पास तुम्हारे नहीं शोभता
दंभ कवि का मेरा
महाकवि, तेरे चरणों में
देना चाहता सबकुछ।
जो मैं अपने इस जीवन में
सरल बांसुरी गढ़ूं जतन से
अपने सुरों से मैं भर दूंगा।
उसके सारे तार।

127

निंदा दुख अपमान हिय को
कितना ही क्यों न दुखाये
फिर भी जानता वहां नहीं कुछ
व्यर्थ-खोने पाये।
रहता जब मलिन धूल पर
आस की न चिन्ता होती तब
मांग दीनता में प्रसाद लूं
बिना तनिक सकुचाये।

सब लोग मुझे भला बताते
जब मैं सुख में रहता
खूब जानता उनमें केवल
भरा हुआ है धोखा।
उस धोखे को सजा-सजाकर
ढ़ोता फिरता मैं माथे पर
तुम्हारी शरण मैं आऊं ऐसा
वक्त नहीं मिलता।

जिस शिशु को राजा के वेश में तुम सहज सजाते
पहनाते जिसको माणिक रत्नों का हार।
खेल-कूद आनंद सब उसके विरूप हो जाते
वस्त्र-आभूषणों का है जो विषम भार।
वहीं उलझ वो टूट न जाये
कहीं धूल का दाग न लग जाये,
अपने आपको इसीलिए वो रखता सबसे बचाके
चलो होती उसको चिन्ता अपार।
जिस शिशु को राजा के वेश में तुम सहज सजाते
पहनाते जिसको माणिक रत्नों का हार।

क्या होगा मां, इस तरह राजा की तरह सजकर
क्या होगा उस मणिक रत्नों के हार से
द्वार खोल दो निकल पड़ूं मैं बीच पथ पर
हवा धूप में धूल-कीचड़ से लथपथ।
जहां लगे मेले जन-जन के।
नये-नये खेल हर क्षण के
चारों तरफ विराट गाथ बजा नहीं सहज सुरों में
वहां नहीं जो पाता वह अधिकार
जिस शिशु को राजा के वेश में तुम सहज सजाते
पहनाते जिसको माणिक रत्नों का हार।

उलझ गये मोटे पतले
ये दोनों तार
इसीलिये जीवन-वीणा की
ठीक नहीं झंकार।
इसी बेसुरी जटिलता में
प्राण मेरे भरते व्यथा से
अचानक रुक जाता मेरा
गीत बारंबार।
इसीलिए जीवन वीणा की
ठीक नहीं झंकार।

यह वेदना ढ़ोना अब
नहीं है मेरे बस में
तेरी सभा के पथ पर आकर
भर रहा लाज में।
और तुम्हारे जो हैं गायक
उनमें नहीं मैं बैठने लायक
खड़ा रहता सबसे पीछे
बाहर के द्वारे।
इसीलिए जीवन-वीणा की
ठीक नहीं झंकार।

130

गाने जैसा बना न कोई गान
देने जैसा न बन पाया कुछ दान।
मन में होता सब रह गया बाकी
देता रहा तुम्हें आज तक धोखा
जीवन को कर पूर्ण न जाने कब हो
इस जीवन की पूजा का अवसान।
गाते जैसा बना न कोई गान

और सेवा में जब मैं होता
प्राणों से देता भेंट भरपूर सजाये
सच-झूठ संजो भी देता कितने
कहीं दीनता की कलई खुल न जाये।
तुमसे कुछ नहीं छिपा अपना बस
इसीलिए पूजा का इतना साहस,
जो कुछ भी है ले जाता चरणों में
अनावृत कर दरिद्र यह प्राण।

131

मुझमें होगी लीला तुम्हारी
इसीलिये मैं आया जग में,
खुल जायेंगे इस घर के सारे द्वार
मिट जायेंगे सारे अहंकार,
आनंदमय तुम्हारे इस संसार में
मेरा कुछ भी न रहेगा बाकी।

मरकर के जब मैं जाऊंगा जी
तब भी तुम्हारी लीला मुझमें होगी,
थम जाएंगी सब वासना मेरी
एक तुम्हारे ही प्रेम में मिलकर,
दुख-सुख के इस विचित्र जीवन में
एक तुम्हारे सिवा न कोई होगा।

132

जाने कहां से दु:स्वप्न आकर
हलचल मचा जाता जीवन में
रो पड़ता, जग कर पाता आखिर
और न कुछ है मां की गोद शयन में,
सोचा शायद होगा कोई और
इसीलिए जूझूं कसकर उस ठौर
हंसी तुम्हारी देख करूं जब गौर समझा
तुमने ही झकझोरा मन को।

सदा हिलाता यह जीवन तो
ले कर सुख, दुख भय
जैसे उसके सिवा कोई न अपना
वो ही है मेरा समुदाय।
यह भय हो जायेगा दूर नयन से
निमिष मात्र में, आते प्रात किरण के
हे परिपूर्ण, तुम्हारे ही सम्मुख जा के
सारी हलचल थम जाएगी पल में।

133

गीतों से मैं तुम्हें ढूंढता
बाहर मन-में
हर दिन अपने इस जीवन में।
गये गीत ये मुझे लिवाकर
हर दरवाजे हर देहली हर घर
गीतों के हाथ सहलाता फिरता
मैं अखिल भुवन में।

जाने कितने पाठ पढ़ाये
कितने गोपनीय पथ दिखाये
चिह्न दिये उसने कितने ही
तारे हृदय गगन में।

देश विचित्र घूमा सुख-दुख का
और रहस्यलोक से लौटा
सांझ हुये ले आये आखिर मुझको
ये तुम कौन भवन में।

134

तुम्हें ढूंढ़ना खत्म न होगा लेकिन
बीत जाये चाहे इस जीवन के दिन,
चला जाऊंगा उस नये जीवन में
नया-दर्शन जागेगा इन आंखों में,
नवीन होकर नयी उस ज्योति में
बांधूंगा फिर नव-मिलन की डोर
तुम्हें ढूंढ़ना खत्म न होगा लेकिन

अंत तुम्हारा कहीं न अंत नहीं है।
इसीलिए लीला नयी-नयी है।
फिर से तुम न जाने किस वेश धर
राह के बीच आ खड़े होओगे हंसकर
मेरी यह बांह थामोगे पास आकर
जागेगी प्राणों में नये भावों की भीड़
तुम्हें ढूंढ़ना खत्म न होगा लेकिन।

135

मेरे शेष गीत में रागिनी पूरी हो ले
मेरा सारा आनंद उसी सुख में मुंह खोले
जिस आनंद अमल से हंसती धूल भरी यह धरती
लता-लता में तृण-तृण में आकुल हो अस्थिर सी
जिस आनंद में दोनों पागल हों ऐसे
जीवन-मरण भुवन में फिरते डोले-डोले,
मेरे सारा आनंद उसी सुख में मुंह खोले।

वो आनंद रूप तूफानी धरकर जो है आता
अट्टहास हंसकर सबके सोये प्राण जगाता
रहता खड़ा अकंप निरंतर अश्रुजल में
दु:ख-वेदना के उन्मीलीत शतदल रक्त कमल में।
जो कुछ भी है उसे धूल में लिटाकर
जिस आनंद के वश में आकर वचन न बोले
मेरा सारा आनंद मिल उसी सुख में मुंह खोले।

136

जब-जब मुझे बांधते आगे-पीछे
लगता नहीं मिलेगा अब छुटकारा।
और जब तुम गिरा देते नीचे
लगता जैसे अब न उठने का कोई चारा।
फिर से तुम खोल दो मेरे बंधन
फिर से तुम ले लो मुझे बांह में भर
यों बांहों के झूले में आजीवन
झुला-झुला यों ही दो सहारा।

तन्द्रा दूर किये देते हो भय से
और भगाते भय को जगा अभय दे।
झलक दिखा झांकते प्राणों में चुपके
जाने कहां फिर छिप जाते दुबककर,
लगता खो दिया हो तुम्हें जैसे
न जाने कहां से तुम पुकारते ऐसे।

137

जितने दिन तू नन्हे शिशु सा
बना रहे बलहीन
अन्तर के अन्तःपुर में
तब तक रहे तल्लीन।
जरा सी चोट से गिर जायेगा।
जरा सी आंच में जल जायेगा
धूल जरा जो लगी कहीं
बस, सारा तन हो गया मलिन!
अन्तर के अन्तःपुर में
तब तक रहे तल्लीन।

जिस दिन वह सामर्थ्य मिलेगी
भर-जाएंगें प्राण
आग-भरा वह अमृत उसका
जब तुम करोगे पान।
बाहर जाता तब दौड़कर
रहना लोट धूल-चंदन पर
सारे बंधन तन पर लेकर
घूमेगा निश्चित स्वाधीन।
अन्तर के अन्तःपुर में
तब तक रहे तल्लीन।

138

नित्य सत्य होगा कब तुमसे
मेरा यह अन्तर।
सत्य कहो आयेगा कब
ऐसा शुभ अवसर
सत्य केवल सत्य का जाप करूं मैं।
बुद्धि सारी सच को सौंपूं
बंधन सीमा पार करूं
इस निखिल भुवन का।
सत्य, कब देखूंगा पूर्ण प्रकाश
तुम्हारा जी भर।

तुम्हें दूर ओट में रखकर
अपनी मिथ्या पर मरता।
जाने क्या-क्या कर जाता
भूतों के राजत्व में।
यह मेरा 'मैं' धो-पोंछकर
तुम ही हो जाये तुममें मिलकर
जीऊंगा जब अपना लोगे
सत्य समझकर।
तुम में ही मेरा मरण कब
जायेगा मर।

139

तुम्हें रखूं अपना स्वामी बनाये
मेरा मैं रह जाये बस इतना होकर।
तुम्हें ढूंढ़ता हर दिशा में इधर-उधर
वारूं सब कुछ तुम पे मैं तुमसे मिलकर।
प्रेम तुम्हारा जगा रहे दिन-रात
बस इच्छा रह जाये इतनी बाकी
तुम्हें रहूं अपना स्वामी बनाये।

तुम्हें अहं से ढंकू न अन्तरयामी
इतना ही बाकी हो मेरा स्वामी।
तुम्हारी लीला होगी मेरे प्राणों पर
मुझको रखा इसी से इस जग में बांधकर।
रहूं बंधा मैं बाहु-डोर से तुम्हारे
बंधन मेरा बस इतना रह जाये बाकी
तुम्हें रहूं अपना स्वामी बनाये।

140

तुमने मेरा प्राण दिया इतना भर
क्षोभ न होगा जो अब जाऊं मैं मर।
दुख में सुख में कितने तो दिन-रात
जाने क्या-क्या बजा किया मन-हाट
कितनी मेरे घर पर आहट
कितने वेश धर रूपों में लिया ये मन हर
क्षोभ न होगा जो अब जाऊं मैं मर।

जानूं तुम्हें न प्राणों में बिठलाया
तुम्हें न अपना बना पूर्णधन पाया
जो पाया वह नहीं भाग्य कुछ कम तो
हौलें तुमने दिया हृदय को छू जो
इतना जान गाया हूं हो तुम, तुम हो
यही भरोसा-पकड़ नाव जाऊंगा तर
क्षोभ न होगा जो अब जाऊं मर।

141

मानव जनम नाव के
हे खेवनहार
सुनते हो वह, वहां पार की
मुरली रही पुकार,
नाव तुम्हारी दिन डूबे क्या
आ लगेगी घाट के तट पर।
वहां सांझ के अंधियारे में
दीखता क्या दीपों का हार।

जैसे मेरे मन को लगता
गंध मधुर इस मंद पवन में
सिंधु के उस पार से आती
हंसी तिमिर के तार।

आते समय फूल कुछ थोड़े
साथ लिये आया था थोड़े
जो भी अब ताजे है उनमें
इस बेला में सजाले डाली।

142

मन को और अपनी काया को
मिटा देना चाहता मैं,
इस काली छाया को।
उस आग में जला देने को
उस सागर में मिला देने को
उन चरणों में गला देने को
रौंद डालना है माया को
मन को और काया को।
जाता जहां वहीं पर इसको
आसन पर बैठा देखदेख तो,
लाज से गड़ जाता-हर लो,
इस गहरी छाया को
मन को और काया को।
तुम मेरे इन भावों में
कहीं नहीं बाधा पाओगे
पूर्ण आकर तुम दर्शन देना
हटाकर इस माया को
मन को और काया को।

143

जाने के दिन यह बात मैं
कहना चाहूं बार-बार
जो मिला है, जो देखा है
वो तुलना से बाहर।
इस ज्योति सागर में निर्मल
शोभित है खिलकर जो शतदल
उसका ही एक या मैंने
धन्य हुआ मैं धन्य।
जाने के दिन यह बात मैं
कहना चाहूं बार-बार।
विश्व रूपी इस खेल घर में
कितने ही खेल, खेल गया मैं।
अपरूप को देखा मैंने
दोनों नयन खोलकर
छूना जिन्हें था न संभव
सबके बीच था वह अभिनव
अंत अब जो यहीं करना हो
कर दो अन्त यहीं
जाने के दिन यह बात मैं
कहना चाहूं बार-बार।

144

नाम से जिसे अपने ढंकते हैं हम
उसी कारगार में तोड़ रहा नाम-कैद में है दम।
सब भूल कर जितना भी दिन-रात
चुना नाम को करते नभ के ऊपर
उतना ही इस नाम मोह के अंधकार में
अपने सत्य रूप को खो देते हैं हम।
ढेर लगाता धूल पर धूल धर-धर
ऊंचे उठा नाम को रखता उस पर
छेद कहीं उसमें न हो जाये
चिन्ता रहे, मन को कौन समझाये,
जितना करूं जतन मैं इस मिथ्या का
उतना ही मैं खोता हूं अपने को।

145

नाम मेरा जब मिटा दोगे है नाथ
मुक्त होकर बच जाऊंगा उस दिन से
होकर मुक्त रचे सपनों में अपने
मेरे प्रभु! तुम में ही नया जनम लें
ढंककर तुम्हारा लिखा हुआ लेखा
खीचूं उस पर अपने नाम की रेखा
कब तक कटेगी जिन्दगी यूंही
विपदाओं को ढोते-ढोते।
सबका चुरा सिंगार आपको
वह चाहता सजाना
सबके सुरों को दवा चाहता
खुद को महज बजाना
मेरा यह नाम चुक न जाये
मुंह में नाम तुम्हारा आये
फिर मैं सबसे मिल पाऊंगा।
बिना नाम के परिचय से।

146

जकड़ी हुई बाधाएं,उन्हें छुड़ाना चाहूं
दर्द होता उन्हें छुड़ाने पर।
मुक्ति मांगने तुम्हारे पास तुम्हारे आऊं
मांगते हुए लाज से जाता मर।
जानूं तुम्हीं श्रेयतम जीवन-पूजा
तुम जैसा न कोई है धन दूजा।
फिर भी जो टूटा-फूटा घर में है जो संचित
फेंक न पाता उन्हें घर के बाहर।
तुम्हें ढांककर रज से अंतर
मरण अनेक बुलाता
मैं जो हृदय से घिन करता उनसे
फिर भी वही सुहाता।
जो कुछ बाकी, है कितनी फांकी
कितनी विफलता, कितना दहकना,
भला अपना जो कहीं मैं तुमसे
मांगू तो लगता है डर।

147

तुम्हारी दया जो
कहीं मैं न जानूं
फिर भी कृपा कर
शरण दो चरणो में।
मैं जो बनाकर रहूं सब भुलाकर
सुख की उपासना करना
फल-फूल चढ़ाकर।
उस धूल भरे घर में
न रखों घृणा से
जगाओ दया कर
लगा वज्रहिय में।
सत्य पड़ा है
दुविधा में घिरकर
तुम्हारे सिवा उसे
कौन खोले फिर।
मृत्यु भेद कर
झरे अमृत निर्झर
अतल दीनता की
उठे शून्यता भर।
पतन व्यथा से
उठी चेतना से
विरोध कोलाहल में
गहन तुम्हारी वाणी।

148

इस जीवन की जितनी भी पूजा
न हुई पूरी जो
जानूं मैं जानूं फिर भी वो
न गयी यूंही खो।
जो कली न पाई खिल
गयी झर जो धूल में मिल
जो नदी मरुस्थल में
भूल गई राह जो
जानूं मैं जानूं फिर भी वो
न गयी यूं ही खो।
जीवन में आज भी जो
रह गया पीछे-पीछे
जानूं मैं जानूं फिर भी वो
हुआ न मिथ्या वो।
मेरा रहा अनागत जो
तुम्हारी वीणा में बज रही वो
जानूं मैं जानूं फिर भी वो
न गयी यूं ही खो।

149

केवल एक प्रणाम में स्वामी
केवल एक प्रणाम में
मेरी देह लुट जाये
तेरी इस दुनिया में।
गहन सावन के मेघों जैसे
रस के भार से नम्र विनत मन
केवल एक प्रणाम में स्वामी
केवल एक प्रणाम में।
सारा मन गिर जाये
तेरे भवन के द्वार पर।
विविध सुरों की आकुल धारा
मिलकर, होकर मन मतवारा,
केवल एक प्रणाम में प्रभु,
केवल एक प्रणाम में।
सारे गीत गिर जाये बस
महा सिंधु में बेबस।
हंस मानसरगामी हो जैसे
गिन क्या सारी रात वैसे
केवल एक प्रणाम में प्रभु,
केवल एक प्रणाम में
सारे प्राण उड़ जाये बस
महामरण के पार।

150

जीवन में जो हमेशा
रह गया आभासों में
फूट नहीं पाया प्रभात में
झिलमिल प्रात-किरण में
जीवन के इस शेष दान में
जीवन के इस शेष गान में,
हे देवता वही धन आज धरूंगा
तुम्हारे चरण-कमल में
प्रभात की ज्योति में जो
फूट नहीं पाया प्रकाश में।
वाणी उसे नहीं कर पाई,
बांध शब्द में पूरा
गीत उसके सुर से बांध
न पाया, रह गया अधूरा।
किस एकांत में चुपचाप दो
मोहन नवीन रूप में
निखिल नयनों के नीचे
यूं छिपा था, सखा वो
फूट नहीं पाया प्रभात में
झिलमिल प्रात-किरण में
भटका उसे ले लेकर
देश-विदेश में मारा-मारा

जोड़-तोड़ जो भी जीवन का
उसको ही घेरकर सारा,
सब भावों में सब कामों में
मेरे अपनों के समाज में

शयन और स्वप्न में रहकर भी
फिर भी रहा अकेला वो।
फूट नहीं पाया प्रभात में
झिलमिल प्रात-किरण में।
कितनी बार बहुतों ने आकर
मांगा उससे मुझको,
विफल मनोरथ हो वो,
सब लौट गये द्वार से,
और नहीं कोई समझेगा
तुमसे मेरा परिचय होगा।
इसी आशा को लेकर अब तक
रहा अपने शून्य गगन में।
फूट नहीं पाया प्रभात में
झिलमिल प्रात-किरण में।

151

तुम्हारे साथ नित-नित का विरोध
अब सहा न जाये
दिन पर दिन ये बोझ देन का
यूंही बढ़ता जाये।
सभी तुम्हारी सभा में सजकर
प्रणाम तुम्हें कर गये आकर,
मलिन वस्त्र पहन छिपता-फिरता
मान न कोई रहता।
क्या बताऊं चित्त की वेदना
गूंगा हो गया है यह मन
तुमसे अब अपनी कोई भी तो
बात नहीं है कहता।
लौटाओ ना अबतो उसको
उठाओ उसे अपमानों से
करो अपने चरणों के नीचे
जनम जनम का दासा

पकड़ा जाऊंगा प्रेम करो से
हूं यह आस लगाये
देर बहुत हो गई, सच है
दोष बहुत बन आये
विधि विधान का बंधन धागा
बांधना चाहूं-पर मैं भागा
इसकी मिले सजा जो लूंगा।
खुशी-खुशी सिर नाये।
पकड़ा जाऊं प्रेम करो से
हूं यह आस लगाये।
लोग करें सब मेरी निन्दा
निन्दा झूठी नहीं है
सब निंदा माथे घर लूंगा
सबके नीचे रह मैं
डूब चली है अब ये बेला
खत्म हुआ क्रय-विक्रय का मेला
मुझे बुलाने जो आये थे
लौट गये सब रुठियाये
पकड़ा जाऊंगा प्रेम करो से
हूं यह आस लगाये

153

संसार में जो-जो लोग
मुझसे है प्यार करते
वो सब मुझे रखना चाहते
कठिन बंध में बांध
तुम्हारा प्रेम है सबसे हटकर
तभी अलग है उसकी धारा
नहीं बांधते, छिप कर रहते
छोड़ कर रखते दास को।
औरों को भूल जाऊं शायद
इसलिए वो रखते घेरे
दिन-पर दिन बीत जाते पर
दर्शन न हुये तुम्हारे।
तुम्हें बुलाऊं या न बुलाऊं
जो भी मन में करता जाऊं
खुशी तुम्हारी देख रही है
मेरी खुशी की आस में।

154

हे नाथ, कब भेजोगे अपने प्रेम दूत को मेरे पास
तब मन के द्वंद्वों को होगा मेरे सहज विनाश
और जो भी आतें हैं मेरे घर पर
वे मुझपर हुकुम चलाते धमकाते, डरवाते
पागलमन द्वार बंद किये दुबका रहता कोने
हार न माने लौटाता उन्हें सदा निराश
उनके आते ही सारी रोक आप ही छूटे
जितने भी बंधन हैं वो अनायास ही टूटे
कौन इसे फिर रोक सकेगा घर में
उसके आह्वान पर कोई कैसे न उत्तर दे।
आता जब भी, आता निपट अकेले
गले में उसके फूलों की माला डाले।
उसी माला में बंधोगे जब खोंचकर
हृदय मेरा रह जायेगा नीरव होकर।

155

गीत गवाये कितने ही तुमने
मुझसे छल करके।
कितने खेल खिला कर सुखके
रुलाकर आंसू जल-से।
हाथ लगे फिर हाथ न आये
पास आकर, हुए दूर पराये
सतत व्यथा से भर-भर जाये
अंतस्तल हे!
कितने तीव्र तार से अपनी
वीणा तुम्हीं सजाते।
सहस्र छेद कर जीवन की
बांसुरी बजाते।
तुम्हारे सुर की लीला में जो
मेरे जनम की नई भोर हो
मौन होकर रख लो इस बार
चरण तल में हे।
गीत गवाये कितने जीवन भर
मुझसे छल करके।

156

मन में होता यही शेष है
किन्तु कहां है शेष।
तुम्हारी सभा से ही मुझको,
आते हैं आदेश
नये गीत, नये राग से
नये सिरे से प्राण जागते,
जाता कहां लीक धर सुर की
जानूं नहीं उद्देश्य।
सांझ की स्वर्णिम आभा से
मिला-मिला कर तान
पूरबी में शेष कर लेता
जब मैं अपना जान।
गहन रात के गहन सुर में
जीवन भर जाता फिर से
तब मेरे नयनों में न रह जाता
निद्रा का लेश।